विश्वपूज्य प्रभु श्रीमद्‌विजय राजेन्द्रसूरि शताब्दि-दशाब्दि
महोत्सव के उपलक्ष्य में द्वितीय खण्ड

अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस

द्वितीय खण्ड

दिव्याशीष प्रदाता :
परम पूज्य, परम कृपालु, विश्वपूज्य
प्रभुश्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी म. सा.

आशीषप्रदाता :
राष्ट्रसन्त वर्तमानाचार्यदेवेश
श्रीमद्विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी म. सा.

प्रेरिका :
प. पू. वयोवृद्धा सरलस्वभाविनी
साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी म. सा.

लेखिका :
साध्वी डॉ. प्रियदर्शनाश्री,
(एम. ए. पीएच-डी.)
साध्वी डॉ. सुदर्शनाश्री,
(एम. ए. पीएच-डी.)

सुकृत सहयोगी
मदनगंज-किशनगढ़ निवासी शाह श्री बुद्धसिंहजी
श्री सुमेरसिंहजी, श्री पुखराजजी, श्री महावीरसिंहजी बेटा
पोता धर्मेन्द्रकुमार महेन्द्रकुमार कर्नावट परिवार की तरफ से
श्री पुखराजजी कर्नाटक की धर्मपत्नी स्वर्गीया
श्रीमती छोटकुंवर एवं सुपुत्र स्वर्गीय
श्री नरेन्द्रकुमार की पुण्य स्मृति में

प्राप्ति स्थान
श्री मदनराजजी जैन
द्वारा – शा. देवीचन्दजी छगनलालजी
आधुनिक वस्त्र विक्रेता
सदर बाजार, भीनमाल-३४३०२९
फोन : (०२९६९) २०१३२

प्रथम आवृत्ति
वीर सम्वत् : २५२५
राजेन्द्र सम्वत् : ९२
विक्रम सम्वत् : २०५५
ईस्वी सन् : १९९८
मूल्य : ५०-००
प्रतियाँ : २०००

अक्षराङ्कन
लेखित
१०, रूपमाधुरी सोसायटी, माणेकबाग, अहमदाबाद-१५

मुद्रण
सर्वोदय ओफसेट
प्रेमदरवाजा बहार, अहमदाबाद.

अनुक्रम

कहाँ क्या ?

विश्वपूज्य प्रभु श्रीमद्‌विजय राजेन्द्रसूरि शताब्दि-दशाब्दि
महोत्सव के उपलक्ष्य में द्वितीय खण्ड

अभिधान राजेन्द्र कोष में,
सूक्ति-सुधारस

द्वितीय खण्ड

दिव्याशीष प्रदाता :
परम पूज्य, परम कृपालु, विश्वपूज्य
प्रभुश्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी म. सा.

आशीषप्रदाता :
राष्ट्रसन्त वर्तमानाचार्यदेवेश
श्रीमद्विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी म. सा.

प्रेरिका :
प. पू. वयोवृद्धा सरलस्वभाविनी
साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी म. सा.

लेखिका :
साध्वी डॉ. प्रियदर्शनाश्री,
(एम. ए. पीएच-डी.)
साध्वी डॉ. सुदर्शनाश्री,
(एम. ए. पीएच-डी.)

सुकृत सहयोगी
मदनगंज-किशनगढ़ निवासी शाह श्री बुद्धसिंहजी
श्री सुमेरसिंहजी, श्री पुखराजजी, श्री महावीरसिंहजी बेटा
पोता धर्मेन्द्रकुमार महेन्द्रकुमार कर्नावट परिवार की तरफ से
श्री पुखराजजी कर्नाटक की धर्मपत्नी स्वर्गीया
श्रीमती छोटकुंवर एवं सुपुत्र स्वर्गीय
श्री नरेन्द्रकुमार की पुण्य स्मृति में

प्राप्ति स्थान
श्री मदनराजजी जैन
द्वारा — शा. देवीचन्दजी छगनलालजी
आधुनिक वस्त्र विक्रेता
सदर बाजार, भीनमाल-३४३०२९
फोन : (०२९६९) २०१३२

प्रथम आवृत्ति
वीर सम्वत् : २५२५
राजेन्द्र सम्वत् : ९२
विक्रम सम्वत् : २०५५
ईस्वी सन् : १९९८
मूल्य : ५०-००
प्रतियाँ : २०००

अक्षराङ्कन
लेखित
१०, रूपमाधुरी सोसायटी, माणेकबाग, अहमदाबाद-१५

मुद्रण
सर्वोदय ओफसेट
प्रेमदरवाजा बहार, अहमदाबाद.

अनुक्रम

2

विश्वविश्रुत है

श्री अभिधान राजेन्द्र कोष ।

विश्व की आश्चर्यकारक घटना है ।

साधन दुर्लभ समय में इतना सारा संगठन, संकलन अपने आप में एक अलौकिक सा प्रतीत होता है। रचनाकार निर्माता ने वर्षो तक इस कोष प्रणयन का चि ंन किया, मनोयोगपूर्वक मनन किया, पश्चात् इस भगीरथ कार्य को संपादित करने का समायोजन किया ।

महामंत्र नवकार की अगाध शक्ति ! कौन कह सकता है शब्दों में उसकी शक्ति को । उस महामंत्र में उनकी थी परम श्रद्धा सह अनुरक्ति एवं सम्पूर्ण समर्पण के साथ उनकी थी परम भक्ति!

इस त्रिवेणी संगम से संकल्प साकार हुआ एवं शुभारंभ भी हो गया । १४ वर्षों की सतत साधना के बाद निर्मित हुआ यह अभिधान राजेन्द्र कोष।

इसमें समाया है सम्पूर्ण जैन वाङ्मय या यों कहें कि जैन वाङ्मय का प्रतिनिधित्व करता है यह कोष। अंगोपांग से लेकर मूल, प्रकीर्णक, छेद ग्रन्थों के सन्दर्भों से समलंकृत है यह विराट्काय ग्रन्थ ।

इस बृहद् विश्वकोष के निर्माता हैं परम योगीन्द्र सरस्वती पुत्र, समर्थ शासनप्रभावक , सत्क्रिया पालक, शिथिलाचार उन्मूलक, शुद्धसनातन सन्मार्ग प्रदर्शक जैनाचार्य विश्वपूज्य प्रातः स्मरणीय प्रभु श्रीमद् विजय राजेन्द्र सूरीश्वरजी महाराजा !

सागर में रत्नों की न्यूनता नहीं । 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' यह कोष भी सागर है जो गहरा है, अथाह है और अपार है। यह ज्ञान सिंधु नाना प्रकार की सूक्ति रत्नों का भंडार है ।

इस ग्रन्थराज ने जिज्ञासुओं की जिज्ञासा शान्त की। मनीषियों की मनीषा में अभिवृद्धि की ।

इस महासागर में मुक्ताओं की कमी नहीं। सूक्तियों की श्रेणिबद्ध पंक्तियाँ प्रतीत होती हैं ।

प्रस्तुत पुस्तक है जन-जन के सम्मुख 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' (१ से ७ खण्ड) ।

मेरी आज्ञानुवर्तिनी विदुषी सुसाध्वी श्री डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं सुसाध्वीश्री डॉ. सुदर्शनाश्रीजी ने अपनी गुरुभक्ति को प्रदर्शित किया है इस 'सूक्ति-सुधारस' को आलेखित करके । गुरुदेव के प्रति संपूर्ण समर्पित उनके भाव ने ही यह अनूठा उपहार पाठकों के सम्मुख रखने को प्रोत्साहित किया है उनको ।

यह 'सूक्ति-सुधारस' (१ से ७ खण्ड) जिज्ञासु जनों के लिए अत्यन्त ही सुन्दर है । 'गागर में सागर है' । गुरुदेव की अमर कृति कालजयी कृति है, जो उनकी उत्कृष्ट त्याग भावना की सतत अप्रमत्त स्थिति को उजागर करनेवाली कृति है । निरन्तर ज्ञान-ध्यान में लीन रहकर तपोधनी गुरुदेवश्री 'महतो महियान्' पद पर प्रतिष्ठित हो गए हैं; उन्हें कषायों पर विजयश्री प्राप्त करने में बड़ी सफलता मिली और वे बीसवीं शताब्दि के सदा के लिए संस्मरणीय परमश्रेष्ठ पुरुष बन गए हैं ।

प्रस्तुत कृति की लेखिका डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. सुदर्शनाश्रीजी अभिनन्दन की पात्रा हैं, जो अहर्निश 'अभिधान राजेन्द्र कोष' के गहरे सागरमें गोते लगाती रहती हैं । 'जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पेठ' की उक्ति के अनुसार श्रम, समय, मन-मस्तिष्क सभी को सार्थक किया है श्रमणी द्वयने ।

मेरी ओर से हार्दिक अभिनंदन के साथ खूब-खूब बधाई इस कृति की लेखिका साध्वीद्वय को । वृद्धि हो उनकी इस प्रवृत्ति में, यही आकांक्षा ।

राजेन्द्र सूरि जैन ज्ञानमंदिर — *- विजय जयन्तसेन सूरि*

अहमदाबाद

दि. २९-४-९८ अक्षय तृतीया

विदुषी डॉ. साध्वीश्री प्रिय-सुदर्शनाश्रीजीम. आदि

अनुवंदना सुखसाता ।

आपके द्वारा प्रेषित 'विश्वपूज्य' (श्रीमद् राजेन्द्रसूरिः जीवन-सौरभ), 'अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस' (1 से 7 खण्ड) एवं 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका' की पाण्डुलिपियाँ मिली हैं । पुस्तकें सुंदर हैं । आपकी श्रुत भक्ति अनुमोदनीय है । आपका यह लेखनश्रम अनेक व्यक्तियों के लिये चित्त के विश्राम का कारण बनेगा, ऐसा मैं मानता हूँ । आगमिक साहित्य के चिंतन स्वाध्याय में आपका साहित्य मददगार बनेगा ।

उत्तरोत्तर साहित्य क्षेत्र में आपका योगदान मिलता रहे, यही मंगल कामना करता हूँ ।

उदयपुर
14-5-98

पद्मसागरसूरि
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र
कोबा-382009 (गुज.)

4

जिनशासन में स्वाध्याय का महत्त्व सर्वाधिक है । जैसे देह प्राणों पर आधारित है वैसे ही जिनशासन स्वाध्याय पर । आचार-प्रधान ग्रन्थों में साधु के लिए पन्द्रह घंटे स्वाध्याय का विधान है । निद्रा, आहार, विहार एवं निहार का जो समय है वह भी स्वाध्याय की व्यवस्था को सुरक्षित रखने के लिए है अर्थात् जीवन पूर्ण रूप से स्वाध्यायमय ही होना चाहिए ऐसा जिनशासन का उद्घोष है । वाचना, पृच्छना, परावर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा इन पाँच प्रभेदों से स्वाध्याय के स्वरूप को दर्शाया गया है, इनका क्रम व्यवस्थित एवं व्यावहारिक है ।

श्रमण जीवन एवं स्वाध्याय ये दोनों-दूध में शक्कर की मीठास के समान एकमेक हैं । वास्तविक श्रमण का जीवन स्वाध्यायमय ही होता है । क्षमाश्रमण का अर्थ है 'क्षमा के लिए श्रम रत' और क्षमा की उपलब्धि स्वाध्याय से ही प्राप्त होती है । स्वाध्याय हीन श्रमण क्षमाश्रमण हो ही नहीं सकता । श्रमण वर्ग आज स्वाध्याय रत हैं और उसके प्रतिफल रूप में अनेक साधु-साध्वी आगमज्ञ बने हैं ।

प्रातःस्मरणीय विश्व पूज्य श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा ने अभिधान राजेन्द्र कोष के सप्त भागों का निर्माण कर स्वाध्याय का सुफल विश्व को भेंट किया है ।

उन सात भागों का मनन चिन्तन कर विदुषी साध्वीरत्नाश्री महाप्रभाश्रीजीम. की विनयरत्ना साध्वीजी श्री डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. श्री सुदर्शनाश्रीजी ने " अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस" को सात खण्डों में निर्मित किया हैं जो आगमों के अनेक रहस्यों के मर्म से ओतप्रोत हैं ।

साध्वी द्वय सतत स्वाध्याय मग्ना हैं, इन्हें अध्ययन एवं अध्यापन का इतना रस है कि कभी-कभी आहार की भी आवश्यकता नहीं रहती । अध्ययन-अध्यापन का रस ऐसा है कि जो आहार के रस की भी पूर्ति कर देता है।

'सूक्ति सुधारस' (१ से ७ खण्ड) के माध्यम से इन्होंने प्रवचनसेवा, दादागुरुदेव श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा के वचनों की सेवा, तथा संघ-सेवा का अनुपम कार्य किया है।

'सूक्ति सुधारस' में क्या है ? यह तो यह पुस्तक स्वयं दर्शा रही है। पाठक गण इसमें दर्शित पथ पर चलना प्रारंभ करेंगे तो कषाय परिणति का ह्रास होकर गुणश्रेणी पर आरोहण कर अति शीघ्र मुक्ति सुख के उपभोक्ता बनेंगे; यह निस्संदेह सत्य है।

साध्वी द्वय द्वारा लिखित ये 'सात खण्ड' भव्यात्मा के मिथ्यात्वमल को दूर करने में एवं सम्यग्दर्शन प्राप्त करवाने में सहायक बनें, यही अंतराभिलाषा.

भीनमाल
वि. संवत् २०५५, वैशाख वदि १० *मुनि जयानंद*

5

लगभग दस वर्ष पूर्व जालोर - स्वर्णगिरितीर्थ - विश्वपूज्य की साधना स्थली पर हमनें 36 दिवसीय अखण्ड मौनपूर्वक आयम्बिल व जप के साथ आराधना की थी, उस समय हमारे हृदय-मन्दिर में विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्र सूरीश्वरजी गुरुदेव श्री की भव्यतम प्रतिमा प्रतिष्ठित हुई, जिसके दर्शन कर एक चलचित्र की तरह हमारे नयन-पट पर गुरुवर की सौम्य, प्रशान्त, करुणार्द्र और कोमल भावमुद्रा सहित मधुर मुस्कान अंकित हो गई। फिर हमें उनके एक के बाद एक अभिधान राजेन्द्र कोष के सप्त भाग दिखाई दिए और उन ग्रन्थों के पास एक दिव्य महर्षि की नयन रम्य छवि जगमगाने लगी। उनके नयन खुले और उन्होंने आशीर्वाद मुद्रा में हमें संकेत दिए ! और हम चित्र लिखित-सी रह गईं। तत्पश्चात् आँखें खोली तो न तो वहाँ गुरुदेव थे और न उनका कोष। तभी से हम दोनों ने दृढ़ संकल्प किया कि हम विश्वपूज्य एवं उनके द्वारा निर्मित कोष पर कार्य करेंगी और जो कुछ भी मधु-सञ्चय होगा, वह जनता-जनार्दन को देंगी ! विश्वपूज्य का सौरभ सर्वत्र फैलाएँगी। उनका वरदान हमारे समस्त ग्रन्थ-प्रणयन की आत्मा है।

16 जून, सन् 1989 के शुभ दिन 'अभिधान राजेन्द्र कोष' में, 'सूक्ति-सुधारस' के लेखन -कार्य का शुभारम्भ किया।

वस्तुतः इस ग्रन्थ-प्रणयन की प्रेरणा हमें विश्वपूज्य गुरुदेवश्री की असीम कृपा-वृष्टि, दिव्याशीर्वाद, करुणा और प्रेम से ही मिली है।

'सूक्ति' शब्द सु + उक्ति इन दो शब्दों से निष्पन्न है। सु अर्थात् श्रेष्ठ और उक्ति का अर्थ है कथन। सूक्ति अर्थात् सुकथन। सुकथन जीवन को सुसंस्कृत एवं मानवीय गुणों से अलंकृत करने के लिए उपयोगी है। सैकड़ों दलीलें एक तरफ और एक चुटैल सुभाषित एक तरफ। सुत्तनिपात में कहा है -

'विञ्ञात सारानि सुभासितानि' [1]

सुभाषित ज्ञान के सार होते हैं। दार्शनिकों, मनीषियों, संतों, कवियों तथा साहित्यकारों ने अपने सद्ग्रन्थों में मानव को जो हितोपदेश दिया है तथा

1. सुत्तनिपात - 2/21/6

महर्षि-ज्ञानीजन अपने प्रवचनों के द्वारा जो सुवचनामृत पिलाते हैं - वह संजीवनी औषधितुल्य है ।

निःसंदेह सुभाषित, सुकथन या सूक्तियाँ उत्प्रेरक, मार्मिक, हृदयस्पर्शी, संक्षिप्त, सारगर्भित अनुभूत और कालजयी होती हैं । इसीकारण सुकथनों / सूक्तियों का विद्युत्-सा चमत्कारी प्रभाव होता है । सूक्तियों की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए महर्षि वशिष्ठ ने योगवाशिष्ठ में कहा है – "महान् व्यक्तियों की सूक्तियाँ अपूर्व आनन्द देनेवाली, उत्कृष्टतर पद पर पहुँचानेवाली और मोह को पूर्णतया दूर करनेवाली होती हैं ।"[1] यही बात शब्दान्तर में आचार्य शुभचन्द्र ने ज्ञानार्णव में कही है – "मनुष्य के अन्तर्हृदय को जगाने के लिए, सत्यासत्य के निर्णय के लिए, लोक-कल्याण के लिए, विश्व-शान्ति और सम्यक् तत्त्व का बोध देने के लिए सत्पुरुषों की सूक्ति का प्रवर्तन होता है ।" [2]

सुवचनों, सुकथनों को धरती का अमृतरस कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी । कालजयी सूक्तियाँ वास्तव में अमृतरस के समान चिरकाल से प्रतिष्ठित रही हैं और अमृत के सदृश ही उन्होंने संजीवनी का कार्य भी किया है । इस संजीवनी रस के सेवन मात्र से मृतवत् मूर्ख प्राणी, जिन्हें हम असल में मरे हुए कहते हैं, जीवित हो जाते हैं, प्राणवान् दिखाई देने लगते हैं । मनीषियों का कथन हैं कि जिसके पास ज्ञान है, वही जीवित है, जो अज्ञानी है वह तो मरा हुआ ही होता है । इन मृत प्राणियों को जीवित करने का अमृत महान् ग्रन्थ अभिधान-राजेन्द्र कोष में प्राप्त होगा । शिवलीलार्णव में कहा है – "जिस प्रकार बालू में पड़ा पानी वहीं सूख जाता है, उसीप्रकार संगीत भी केवल कान तक पहुँचकर सूख जाता है, किन्तु कवि की सूक्ति में ही ऐसी शक्ति है, कि वह सुगन्धयुक्त अमृत के समान हृदय के अन्तस्तल तक पहुँचकर मन को सदैव आह्लादित करती रहती है । [3] इसीलिए 'सुभाषितों का रस अन्य रसों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है ।' [4] अमृतरस छलकाती ये सूक्तियाँ

---

1. अपूर्वाह्लाद दायिन्यः उच्चैस्तर पदाश्रयाः ।
   अतिमोहापहारिण्यः सूक्तयो हि महियसाम् ॥
   योगवाशिष्ठ 5/4/5
2. प्रबोधाय विवेकाय, हिताय प्रशमाय च ।
   सम्यक् तत्त्वोपदेशाय, सतां सूक्ति प्रवर्तते ॥
   ज्ञानार्णव
3. कर्णगतं शुष्यति कर्ण एव, संगीतकं सैकत वारिरीत्या ।
   आनन्दयत्यन्तरनुप्रविश्य, सूक्ति कवे रेव सुधा सगन्धा ॥ – शिवलीलार्णव
4. नूनं सुभाषित रसोन्यः रसातिशायी – योग वाशिष्ठ 5/4/5

1

समर्पण

रवि-प्रभा सम है मुखश्री, चन्द्र सम अति प्रशान्त ।
तिमिर में भटके जनके, दीप उज्जवल कान्त ॥ १ ॥

लघुता में प्रभुता भरी, विश्व-पूज्य मुनीन्द्र ।
करुणा सागर आप थे, यति के बने यतीन्द्र ॥ २ ॥

लोक-मंगली थे कमल, योगीश्वर गुरुराज ।
सुमन-माल सुन्दर सजी, करे समर्पण आज ॥ ३ ॥

अभिधान राजेन्द्र कोष, रचना रची ललाम ।
नित चरणों में आपके, विधियुत् करें प्रणाम ॥ ४ ॥

काव्य-शिल्प समझें नहीं, फिर भी किया प्रयास ।
गुरु-कृपा से यह बने, जन-मन का विश्वास ॥ ५ ॥

प्रियदर्शना की दर्शना, सुदर्शना भी साथ ।
रज रहे राजेन्द्र का, चरण झुकाते माथ ॥ ६ ॥

- श्री राजेन्द्रगुणगीतवेणु
- श्री राजेन्द्रपदपद्मरेणु

साध्वी प्रियदर्शनाश्री

साध्वी सुदर्शनाश्री

2

विश्वविश्रुत है

श्री अभिधान राजेन्द्र कोष ।

विश्व की आश्चर्यकारक घटना है ।

साधन दुर्लभ समय में इतना सारा संगठन, संकलन अपने आप में एक अलौकिक सा प्रतीत होता है । रचनाकार निर्माता ने वर्षो तक इस कोष प्रणयन का चि न किया, मनोयोगपूर्वक मनन किया, पश्चात् इस भगीरथ कार्य को संपादित करने का समायोजन किया ।

महामंत्र नवकार की अगाध शक्ति ! कौन कह सकता है शब्दों में उसकी शक्ति को । उस महामंत्र में उनकी थी परम श्रद्धा सह अनुरक्ति एवं सम्पूर्ण समर्पण के साथ उनकी थी परम भक्ति!

इस त्रिवेणी संगम से संकल्प साकार हुआ एवं शुभारंभ भी हो गया । १४ वर्षो की सतत साधना के बाद निर्मित हुआ यह अभिधान राजेन्द्र कोष।

इसमें समाया है सम्पूर्ण जैन वाङ्मय या यों कहें कि जैन वाङ्मय का प्रतिनिधित्व करता है यह कोष । अंगोपांग से लेकर मूल, प्रकीर्णक, छेद ग्रन्थों के सन्दर्भों से समलंकृत है यह विराट्काय ग्रन्थ ।

इस बृहद् विश्वकोष के निर्माता हैं परम योगीन्द्र सरस्वती पुत्र, समर्थ शासनप्रभावक , सत्क्रिया पालक, शिथिलाचार उन्मूलक, शुद्धसनातन सन्मार्ग प्रदर्शक जैनाचार्य विश्वपूज्य प्रातः स्मरणीय प्रभु श्रीमद् विजय राजेन्द्र सूरीश्वरजी महाराजा !

सागर में रत्नों की न्यूनता नहीं । 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' यह कोष भी सागर है जो गहरा है, अथाह है और अपार है । यह ज्ञान सिंधु नाना प्रकार की सूक्ति रत्नों का भंडार है ।

इस ग्रन्थराज ने जिज्ञासुओं की जिज्ञासा शान्त की । मनीषियों की मनीषा में अभिवृद्धि की ।

इस महासागर में मुक्ताओं की कमी नहीं । सूक्तियों की श्रेणिबद्ध पंक्तियाँ प्रतीत होती हैं ।

प्रस्तुत पुस्तक है जन-जन के सम्मुख 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' (१ से ७ खण्ड) ।

मेरी आज्ञानुवर्तिनी विदुषी सुसाध्वी श्री डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं सुसाध्वीश्री डॉ. सुदर्शनाश्रीजी ने अपनी गुरुभक्ति को प्रदर्शित किया है इस 'सूक्ति-सुधारस' को आलेखित करके । गुरुदेव के प्रति संपूर्ण समर्पित उनके भाव ने ही यह अनूठा उपहार पाठकों के सम्मुख रखने को प्रोत्साहित किया है उनको ।

यह 'सूक्ति-सुधारस' (१ से ७ खण्ड) जिज्ञासु जनों के लिए अत्यन्त ही सुन्दर है । 'गागर में सागर है' । गुरुदेव की अमर कृति कालजयी कृति है, जो उनकी उत्कृष्ट त्याग भावना की सतत अप्रमत्त स्थिति को उजागर करनेवाली कृति है । निरन्तर ज्ञान-ध्यान में लीन रहकर तपोधनी गुरुदेवश्री 'महतो महियान्' पद पर प्रतिष्ठित हो गए हैं; उन्हें कषायों पर विजयश्री प्राप्त करने में बड़ी सफलता मिली और वे बीसवीं शताब्दि के सदा के लिए संस्मरणीय परमश्रेष्ठ पुरुष बन गए हैं ।

प्रस्तुत कृति की लेखिका डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. सुदर्शनाश्रीजी अभिनन्दन की पात्रा हैं, जो अहर्निश 'अभिधान राजेन्द्र कोष' के गहरे सागरमें गोते लगाती रहती हैं । 'जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पेठ' की उक्ति के अनुसार श्रम, समय, मन-मस्तिष्क सभी को सार्थक किया है श्रमणी द्वयने ।

मेरी ओर से हार्दिक अभिनंदन के साथ खूब-खूब बधाई इस कृति की लेखिका साध्वीद्वय को । वृद्धि हो उनकी इस प्रवृत्ति में, यही आकांक्षा ।

राजेन्द्र सूरि जैन ज्ञानमंदिर
अहमदाबाद
दि. २९-४-९८ अक्षय तृतीया

– ***विजय जयन्तसेन सूरि***

विदुषी डॉ. साध्वीश्री प्रिय-सुदर्शनाश्रीजीम. आदि

अनुवंदना सुखसाता ।

आपके द्वारा प्रेषित 'विश्वपूज्य' (श्रीमद् राजेन्द्रसूरिः जीवन-सौरभ), 'अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस' (1 से 7 खण्ड) एवं 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका' की पाण्डुलिपियाँ मिली हैं । पुस्तकें सुंदर हैं । आपकी श्रुत भक्ति अनुमोदनीय है । आपका यह लेखनश्रम अनेक व्यक्तियों के लिये चित्त के विश्राम का कारण बनेगा, ऐसा मैं मानता हूँ । आगमिक साहित्य के चिंतन स्वाध्याय में आपका साहित्य मददगार बनेगा।

उत्तरोत्तर साहित्य क्षेत्र में आपका योगदान मिलता रहे, यही मंगल कामना करता हूँ ।

उदयपुर
14-5-98

पद्मसागरसूरि
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र
कोबा-382009 (गुज.)

4

जिनशासन में स्वाध्याय का महत्त्व सर्वाधिक है। जैसे देह प्राणों पर आधारित है वैसे ही जिनशासन स्वाध्याय पर। आचार-प्रधान ग्रन्थों में साधु के लिए पन्द्रह घंटे स्वाध्याय का विधान है। निद्रा, आहार, विहार एवं निहार का जो समय है वह भी स्वाध्याय की व्यवस्था को सुरक्षित रखने के लिए है अर्थात् जीवन पूर्ण रूप से स्वाध्यायमय ही होना चाहिए ऐसा जिनशासन का उद्घोष है। वाचना, पृच्छना, परावर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा इन पाँच प्रभेदों से स्वाध्याय के स्वरूप को दर्शाया गया है, इनका क्रम व्यवस्थित एवं व्यावहारिक है।

श्रमण जीवन एवं स्वाध्याय ये दोनों-दूध में शक्कर की मीठास के समान एकमेक हैं। वास्तविक श्रमण का जीवन स्वाध्यायमय ही होता है। क्षमाश्रमण का अर्थ है 'क्षमा के लिए श्रम रत' और क्षमा की उपलब्धि स्वाध्याय से ही प्राप्त होती है। स्वाध्याय हीन श्रमण क्षमाश्रमण हो ही नहीं सकता। श्रमण वर्ग आज स्वाध्याय रत हैं और उसके प्रतिफल रूप में अनेक साधु-साध्वी आगमज्ञ बने हैं।

प्रातःस्मरणीय विश्व पूज्य श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा ने अभिधान राजेन्द्र कोष के सप्त भागों का निर्माण कर स्वाध्याय का सुफल विश्व को भेंट किया है।

उन सात भागों का मनन चिन्तन कर विदुषी साध्वीरत्नाश्री महाप्रभाश्रीजीम. की विनयरत्ना साध्वीजी श्री डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. श्री सुदर्शनाश्रीजी ने "अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस" को सात खण्डों में निर्मित किया हैं जो आगमों के अनेक रहस्यों के मर्म से ओतप्रोत हैं।

साध्वी द्वय सतत स्वाध्याय मग्ना हैं, इन्हें अध्ययन एवं अध्यापन का इतना रस है कि कभी-कभी आहार की भी आवश्यकता नहीं रहती। अध्ययन-अध्यापन का रस ऐसा है कि जो आहार के रस की भी पूर्ति कर देता है।

'सूक्ति सुधारस' (१ से ७ खण्ड) के माध्यम से इन्होंने प्रवचनसेवा, दादागुरुदेव श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा के वचनों की सेवा, तथा संघ-सेवा का अनुपम कार्य किया है।

'सूक्ति सुधारस' में क्या है ? यह तो यह पुस्तक स्वयं दर्शा रही है। पाठक गण इसमें दर्शित पथ पर चलना प्रारंभ करेंगे तो कषाय परिणति का ह्रास होकर गुणश्रेणी पर आरोहण कर अति शीघ्र मुक्ति सुख के उपभोक्ता बनेंगे; यह निस्संदेह सत्य है ।

साध्वी द्वय द्वारा लिखित ये 'सात खण्ड' भव्यात्मा के मिथ्यात्वमल को दूर करने में एवं सम्यग्दर्शन प्राप्त करवाने में सहायक बनें, यही अंतराभिलाषा.

भीनमाल
वि. संवत् २०५५, वैशाख वदि १० *मुनि जयानंद*

5

लगभग दस वर्ष पूर्व जालोर - स्वर्णगिरितीर्थ - *विश्वपूज्य की साधना* स्थली पर हमनें 36 दिवसीय *अखण्ड मौनपूर्वक आयम्बिल व जप के साथ* आराधना की थी, उस समय हमारे हृदय-मन्दिर में विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्र सूरीश्वरजी गुरुदेव श्री की भव्यतम प्रतिमा प्रतिष्ठित हुई, जिसके दर्शन कर एक चलचित्र की तरह हमारे नयन-पट पर गुरुवर की सौम्य, प्रशान्त, करुणार्द्र और कोमल भावमुद्रा सहित मधुर मुस्कान अंकित हो गई । फिर हमें उनके एक के बाद एक अभिधान राजेन्द्र कोष के सप्त भाग दिखाई दिए और उन ग्रन्थों के पास एक दिव्य महर्षि की नयन रम्य छवि जगमगाने लगी । उनके नयन खुले और उन्होंने आशीर्वाद मुद्रा में हमें संकेत दिए ! और हम चित्र लिखित-सी रह गईं । तत्पश्चात् आँखें खोली तो न तो वहाँ गुरुदेव थे और न उनका कोष । तभी से हम दोनों ने दृढ़ संकल्प किया कि हम विश्वपूज्य एवं उनके द्वारा निर्मित कोष पर कार्य करेंगी और जो कुछ भी मधु-सञ्चय होगा, वह जनता-जनार्दन को देंगी ! विश्वपूज्य का सौरभ सर्वत्र फैलाएँगी । उनका वरदान हमारे समस्त ग्रन्थ-प्रणयन की आत्मा है ।

16 जून, सन् 1989 के शुभ दिन 'अभिधान राजेन्द्र कोष' में, 'सूक्ति-सुधारस' के लेखन -कार्य का शुभारम्भ किया ।

वस्तुतः इस ग्रन्थ-प्रणयन की प्रेरणा हमें विश्वपूज्य गुरुदेवश्री की असीम कृपा-वृष्टि, दिव्याशीर्वाद, करुणा और प्रेम से ही मिली है ।

'सूक्ति' शब्द सु + उक्ति इन दो शब्दों से निष्पन्न है । सु अर्थात् श्रेष्ठ और उक्ति का अर्थ है कथन । सूक्ति अर्थात् सुकथन । सुकथन जीवन को सुसंस्कृत एवं मानवीय गुणों से अलंकृत करने के लिए उपयोगी है । सैकडों दलीलें एक तरफ और एक चुटैल सुभाषित एक तरफ । सुत्तनिपात में कहा है —

'विञ्ञात सारानि सुभासितानि' [1]

सुभाषित ज्ञान के सार होते हैं । दार्शनिकों, मनीषियों, संतों, कवियों तथा साहित्यकारों ने अपने सद्ग्रन्थों में मानव को जो हितोपदेश दिया है तथा

---

1. सुत्तनिपात - 2/21/6

महर्षि-ज्ञानीजन अपने प्रवचनों के द्वारा जो सुवचनामृत पिलाते हैं - वह संजीवनी औषधितुल्य है ।

नि:संदेह सुभाषित, सुकथन या सूक्तियाँ उत्प्रेरक, मार्मिक, हृदयस्पर्शी, संक्षिप्त, सारगर्भित अनुभूत और कालजयी होती हैं । इसीकारण सुकथनों / सूक्तियों का विद्युत्-सा चमत्कारी प्रभाव होता है । सूक्तियों की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए महर्षि वशिष्ठ ने योगवाशिष्ठ में कहा है — "महान् व्यक्तियों की सूक्तियाँ अपूर्व आनन्द देनेवाली, उत्कृष्टतर पद पर पहुँचानेवाली और मोह को पूर्णतया दूर करनेवाली होती हैं ।"[1] यही बात शब्दान्तर में आचार्य शुभचन्द्र ने ज्ञानार्णव में कही है — "मनुष्य के अन्तर्हृदय को जगाने के लिए, सत्यासत्य के निर्णय के लिए, लोक-कल्याण के लिए, विश्व-शान्ति और सम्यक् तत्त्व का बोध देने के लिए सत्पुरुषों की सूक्ति का प्रवर्तन होता है ।" [2]

सुवचनों, सुकथनों को धरती का अमृतरस कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी । कालजयी सूक्तियाँ वास्तव में अमृतरस के समान चिरकाल से प्रतिष्ठित रही हैं और अमृत के सदृश ही उन्होंने संजीवनी का कार्य भी किया है । इस संजीवनी रस के सेवन मात्र से मृतवत् मूर्ख प्राणी, जिन्हें हम असल में मरे हुए कहते हैं, जीवित हो जाते हैं, प्राणवान् दिखाई देने लगते हैं । मनीषियों का कथन हैं कि जिसके पास ज्ञान है, वही जीवित है, जो अज्ञानी है वह तो मरा हुआ ही होता है । इन मृत प्राणियों को जीवित करने का अमृत महान् ग्रन्थ अभिधान-राजेन्द्र कोष में प्राप्त होगा । शिवलीलार्णव में कहा है — "जिस प्रकार बालू में पड़ा पानी वहीं सूख जाता है, उसीप्रकार संगीत भी केवल कान तक पहुँचकर सूख जाता है, किन्तु कवि की सूक्ति में ही ऐसी शक्ति है, कि वह सुगन्धयुक्त अमृत के समान हृदय के अन्तस्तल तक पहुँचकर मन को सदैव आह्लादित करती रहती है । [3] इसीलिए 'सुभाषितों का रस अन्य रसों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है ।' [4] अमृतरस छलकाती ये सूक्तियाँ

---

1. अपूर्वाह्लाद दायिन्य: उच्चैस्तर पदाश्रया: ।
   अतिमोहापहारिण्य: सूक्तयो हि महियसाम् ॥
   योगवाशिष्ठ 5/4/5
2. प्रबोधाय विवेकाय, हिताय प्रशमाय च ।
   सम्यक् तत्त्वोपदेशाय, सतां सूक्ति प्रवर्तते ॥
   ज्ञानार्णव
3. कर्णगतं शुष्यति कर्ण एव, संगीतकं सैकत वारिरीत्या ।
   आनन्दयत्यन्तरनुप्रविष्य, सूक्ति कवे रेव सुधा सगन्धा ॥ — शिवलीलार्णव
4. नूनं सुभाषित रसोन्य: रसातिशायी — योग वाशिष्ठ 5/4/5

अन्तस्तल को स्पर्श करती हुई प्रतीत होती है । वस्तुतः जीवन को सुरभित व सुशोभित करनेवाला सुभाषित एक अनमोल रत्न है ।

सुभाषित में जो माधुर्य रस होता है, उसका वर्णन करते हुए कहा है – "सुभाषित का रस इतना मधुर [मीठा] है कि उसके आगे द्राक्षा म्लानमुखी हो गई । मिश्री सूखकर पत्थर जैसी किरकिरी हो गई और सुधा भयभीत होकर स्वर्ग में चली गई ।" [1]

अभिधान राजेन्द्र कोष की ये सूक्तियाँ अनुभव के 'सार' जैसी, समुद्र-मन्थन के 'अमृत' जैसी, दधि-मन्थन के 'मक्खन' जैसी और मनीषियों के आनन्ददायक 'साक्षात्कार' जैसी "देखन में छोटे लगे, घाव करे गम्भीर" की उक्ति को चरितार्थ करती हैं । इनका प्रभाव गहन हैं । ये अन्तर ज्योति जगाती हैं ।

वास्तव में, अभिधान राजेन्द्र कोष एक ऐसी अमरकृति है, जो देश-विदेश में लोकप्रियता प्राप्त कर चुकी है । यह एक ऐसा विराट् शब्द-कोष है, जिसमें परम मधुर अर्धमागधी भाषा, इक्षुरस के समान पुष्टिकारक प्राकृतभाषा और अमृतवर्षिणी संस्कृत भाषा के शब्दों का सरस व सरल निरुपण हुआ है ।

विश्वपूज्य परमाराध्यपाद मंगलमूर्ति गुरुदेव श्रीमद् राजेन्द्र-सूरीश्वरजी महाराजा साहेब पुरातन ऋषि परम्परा के महामुनीश्वर थे, जिनका तपोबल एवं ज्ञान-साधना अनुपम, अद्वितीय थी । इस प्रज्ञामहर्षि ने सन् 1890 में इस कोष का श्रीगणेश किया तथा सात भागों में 14 वर्षों तक अपूर्व स्वाध्याय, चिन्तन एवं साधना से सन् 1903 में परिपूर्ण किया । लोक-मङ्गल का यह कोष सुधा-सिन्धु है ।

इस कोष में सूक्तियों का निरुपण-कौशल पण्डितों, दार्शनिकों और साधारण जनता-जनार्दन के लिए समान उपयोगी है ।

इस कोष की महनीयता को दर्शाना सूर्य को दीपक दिखाना है ।

हमने अभिधान राजेन्द्र कोष की लगभग 2700 सूक्तियों का हिन्दी सरलार्थ प्रस्तुत कृति 'सूक्ति सुधारस' के सात खण्डों में किया है ।

'सूक्ति सुधारस' अर्थात् अभिधान राजेन्द्र-कोष-सिन्धु के मन्थन से निःसृत अमृत-रस से गूँथा गया शाश्वत सत्य का वह भव्य गुलदस्ता है, जिसमें 2667 सुकथनों/सूक्तियों की मुस्कराती कलियाँ खिली हुई हैं ।

ऐसे विशाल और विराट् कोष-सिन्धु की सूक्ति रूपी मणि-रत्नों को

---

1 द्राक्षाम्लानमुखी जाता, शर्करा चाश्मतां गता,
सुभाषित रसस्याग्रे, सुधा भीता दिवंगता ॥

खोजना कुशल गोताखोर से सम्भव है। हम निपट अज्ञानी हैं — न तो साहित्य-विभूषा को जानती हैं, न दर्शन की गरिमा को समझती हैं और न व्याकरण की बारीकी समझती हैं, फिर भी हमने इस कोष के सात भागों की सूक्तियों को सात खण्डों में व्याख्यायित करने की बालचेष्टा की है। यह भी विश्वपूज्य के प्रति हमारी अखण्ड भक्ति के कारण।

हमारा बाल प्रयास केवल ऐसा ही है —

वक्तुं गुणान् गुण समुद्र ! शशाङ्ककान्तान् ।
कस्ते क्षमः सुरगुरु प्रतिमोऽपि बुद्ध्या
कल्पान्त काल पवनोद्धत नक्र चक्रं ।
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥

हमने अपनी भुजाओं से कोष रूपी विशाल समुद्र को तैरने का प्रयास केवल विश्व-विभु परम कृपालु गुरुदेवश्री के प्रति हमारी अखण्ड श्रद्धा और प.पू. परमाराध्यपाद प्रशान्तमूर्ति कविरत्न आचार्य देवेश श्रीमद् विजय विद्याचन्द्र-सूरीश्वरजी म.सा. तत्पट्टालंकार प. पूज्यपाद साहित्यमनीषी राष्ट्रसन्त श्रीमद् विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी महाराजा साहेब की असीमकृपा तथा परम पूज्या परमोपकारिणी गुरुवर्या श्री हेतश्रीजी म.सा. एवं परम पूज्या सरलस्वभाविनी स्नेह-वात्सल्यमयी साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी म. सा. [हमारी सांसारिक पूज्या दादीजी] की प्रीति से किया है। जो कुछ भी इसमें हैं, वह इन्हीं पञ्चमूर्ति का प्रसाद है।

हम प्रणत हैं उन पंचमूर्ति के चरण कमलों में, जिनके स्नेह-वात्सल्य व आशीर्वचन से प्रस्तुत ग्रन्थ साकार हो सका है।

हमारी जीवन-क्यारी को सदा सींचनेवाली परम श्रद्धेया [हमारी संसारपक्षीय दादीजी] पूज्यवर्या श्री के अनन्य उपकारों को शब्दों के दायरे में बाँधने में हम असमर्थ हैं। उनके द्वारा प्राप्त अमित वात्सल्य व सहयोग से ही हमें सतत ज्ञान-ध्यान, पठन-पाठन, लेखन व स्वाध्यायादि करने में हरतरह की सुविधा रही है। आपके इन अनन्त उपकारों से हम कभी भी उऋण नहीं हो सकतीं।

हमारे पास इन गुरुजनों के प्रति आभार-प्रदर्शन करने के लिए न तो शब्द है, न कौशल है, न कला है और न ही अलंकार ! फिर भी हम इनकी करुणा, कृपा और वात्सल्य का अमृतपान कर प्रस्तुत ग्रंथ के आलेखन में सक्षम बन सकी हैं।

हम उनके पद-पद्मों में अनन्यभावेन समर्पित हैं, नतमस्तक हैं।

इसमें जो कुछ भी श्रेष्ठ और मौलिक है, उस गुरु-सत्ता के शुभाशीष का ही यह शुभ फल है।

विश्वपूज्य प्रभु श्रीमद् राजेन्द्रसूरि शताब्दि-दशाब्दि महोत्सव के उपलक्ष्य में अभिधान राजेन्द्र कोष के सुगन्धित सुमनों से श्रद्धा-भक्ति के स्वर्णिम धागे से गूंथी यह द्वितीय सुमनमाला उन्हें पहना रही हैं, विश्वपूज्य प्रभु हमारी इस नन्हीं माला को स्वीकार करें।

हमें विश्वास है यह श्रद्धा-भक्ति-सुमन जन-जीवन को धर्म, नीति-दर्शन-ज्ञान-आचार, राष्ट्रधर्म, आरोग्य, उपदेश, विनय-विवेक, नम्रता, तप-संयम, सन्तोष-सदाचार, क्षमा, दया, करुणा, अहिंसा-सत्य आदि की सौरभ से महकाता रहेगा और हमारे तथा जन-जन के आस्था के केन्द्र विश्वपूज्य की यशः सुरभि समस्त जगत् में फैलाता रहेगा।

इस ग्रन्थ में त्रुटियाँ होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि हर मानव कृति में कुछ न कुछ त्रुटियाँ रह ही जाती हैं। इसीलिए लेनिन ने ठीक ही कहा है: **त्रुटियाँ तो केवल उसी से नहीं होगी जो कभी कोई काम करे ही नहीं।**

गच्छतः स्खलनं क्वापि, भवत्येव प्रमादतः ।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र, समादधति सज्जनाः ॥

- श्री राजेन्द्रगुणगीतवेणु
- श्री राजेन्द्रपदपद्मरेणु

डॉ. प्रियदर्शनाश्री, एम. ए., पीएच.-डी.
डॉ. सुदर्शनाश्री, एम. ए., पीएच.-डी.

6

आभार

हम परम पूज्य राष्ट्रसन्त आचार्यदेव श्रीमद् जयन्तसेन सूरीश्वरजी म. सा. "मधुकर", परम पूज्य राष्ट्रसन्त आचार्यदेव श्रीमद् पद्मसागर सूरीश्वरजी म. सा. एवं प. पू. मुनिप्रवर श्री जयानन्द विजयजी म. सा. के चरण कमलों में वंदना करती हैं, जिन्होंने असीम कृपा करके अपने मन्तव्य लिखकर हमें अनुगृहीत किया है। हमें उनकी शुभप्रेरणा व शुभाशीष सदा मिलती रहे, यही करबद्ध प्रार्थना है।

इसके साथ ही हमारी सुविनीत गुरुबहनें सुसाध्वीजी श्री आत्मदर्शनाश्रीजी, श्रीसम्यग्दर्शनाश्रीजी (सांसारिक सहोदरबहनें), श्री चारूदर्शनाश्रीजी एवं श्री प्रीतिदर्शनाश्रीजी (एम.ए.) की शुभकामना का सम्बल भी इस ग्रन्थ के प्रणयन में साथ रहा है। अतः उनके प्रति भी हृदय से आभारी हैं।

हम पद्म विभूषण, पूर्व भारतीय राजदूत ब्रिटेन, विश्वविख्यात विधिवेत्ता एवं महान् साहित्यकार माननीय डॉ. श्रीमान् लक्ष्मीमल्लजी सिंघवी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हैं, जिन्होंने अति भव्य मन्तव्य लिखकर हमें प्रेरित किया है। तदर्थ हम उनके प्रति हृदय से अत्यन्त आभारी हैं।

इस अवसर पर हिन्दी-अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध मनीषी सरलमना माननीय डो. श्री जवाहरचन्द्रजी पटनी का योगदान भी जीवन में कभी नहीं भुलाया जा सकता है। पिछले दो वर्षों से सतत उनकी यही प्रेरणा रही कि आप शीघ्रातिशीघ्र 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' [1 से 7 खण्ड], 'अभिधान राजेन्द्र कोष में जैनदर्शन वाटिका', 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, कथा-कुसुम' और 'विश्वपूज्य' (श्रीमद राजेन्द्रसूरिः जीवन-सौरभ) आदि ग्रन्थों को सम्पन्न करें। उनकी सक्रिय प्रेरणा, सफल निर्देशन, सतत प्रोत्साहन व आत्मीयतापूर्ण सहयोग-सुझाव के कारण ही ये ग्रन्थ [1 से 10 खण्ड] यथासमय पूर्ण हो सके हैं। पटनी सा0 ने अपने अमूल्य क्षणों का सदुपयोग प्रस्तुत ग्रन्थ के अवलोकन में किया। हमने यह अनुभव किया कि देहयष्टि वार्धक्य के कारण कृश होती है, परन्तु आत्मा अजर अमर है। गीता में कहा है :

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः ॥
कर्मयोगी का यही अमर स्वरूप है ।

हम साध्वीद्वय उनके प्रति हृदय से कृतज्ञा हैं । इतना ही नहीं, अपितु प्रस्तुत ग्रन्थों के अनुरूप अपना आमुख लिखने का कष्ट किया तदर्थ भी हम आभारी हैं।

उनके इस प्रयास के लिए हम धन्यवाद या कृतज्ञता ज्ञापन कर उनके अमूल्य श्रम का अवमूल्यन नहीं करना चाहतीं । बस, इतना ही कहेंगी कि इस सम्पूर्ण कार्य के निमित्त उन्हें ज्ञान के इस अथाह सागर में बार-बार डुबकियाँ लगाने का जो सुअवसर प्राप्त हुआ, वह उनके लिए महान् सौभाग्य है ।

तत्पश्चात् अनवरत शिक्षा के क्षेत्र में सफल मार्गदर्शन देनेवाले शिक्षा गुरुजनों के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापन करना हमारा परम कर्तव्य है । बी. ए. [प्रथम खण्ड] से लेकर आजतक हमारे शोध निर्देशक माननीय डॉ. श्री अखिलेशकुमारजी राय सा. द्वारा सफल निर्देशन, सतत प्रोत्साहन एवं निरन्तर प्रेरणा को विस्मृत नहीं किया जा सकता, जिसके परिणाम स्वरूप अध्ययन के क्षेत्र में हम प्रगतिपथ पर अग्रसर हुईं । इसी कड़ी में श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध-संस्थान वाराणसी के निदेशक माननीय डॉ. श्री सागरमलजी जैन के द्वारा प्राप्त सहयोग को भी जीवन में कभी भी भुलाया नहीं जा सकता, क्योंकि पार्श्वनाथ विद्याश्रम के परिसर में सालभर रहकर हम साध्वी द्वय ने 'आचारांग का नीतिशास्त्रीय अध्ययन' और 'आनन्दघन का रहस्यवाद' — इन दोनों शोध-प्रबन्ध-ग्रन्थों को पूर्ण किया था, जो पीएच.डी. की उपाधि के लिए अवधेश प्रतापसिंह विश्वविद्यालय रीवा (म.प्र) ने स्वीकृत किये । इन दोनों शोध-प्रबन्ध ग्रन्थों को पूर्ण करने में डॉ. जैन सा. का अमूल्य योगदान रहा है । इतना ही नहीं, प्रस्तुत ग्रन्थों के अनुरूप मन्तव्य लिखने का कष्ट किया । तदर्थ भी हम आभारी हैं।

इनके अतिरिक्त विश्रुत पण्डितवर्य माननीय श्रीमान् दलसुख भाई मालवणियाजी, विद्वद्वर्य डॉ. श्री नेमीचन्दजी जैन, शास्त्रसिद्धान्त रहस्यविद् ? पण्डितवर्य श्री गोविन्दरामजी व्यास, विद्वद्वर्य पं. श्री जयनन्दनजी झा, पण्डितवर्य श्री हीरालालजी शास्त्री एम.ए., हिन्दी अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध मनीषी श्री भागचन्दजी जैन, एवं डॉ. श्री अमृतलालजी गाँधी ने भी मन्तव्य लिखकर स्नेहपूर्ण उदारता दिखाई, तदर्थ हम उन सबके प्रति भी हृदय से अत्यन्त आभारी हैं ।

अन्त में उन सभी का आभार मानती हैं जिनका हमें प्रत्यक्ष व परोक्ष सहकार / सहयोग मिला है ।

यह कृति केवल हमारी बालचेष्टा है, अतः सुविज्ञ, उदारमना सज्जन हमारी त्रुटियों के लिए क्षमा करें ।

पौष शुक्ला सप्तमी — ***डॉ. प्रियदर्शनाश्री***

5 जनवरी, 1998 — ***डॉ. सुदर्शनाश्री***

श्रुतज्ञानप्रेमी श्रेष्ठिवर्य

श्रीमान् बुद्धसिंहजी पुखराजजी कर्नावट

परम गुरुभक्त, धर्मानुरागी श्रेष्ठिवर्य श्रावकरत्न मदनगंज—किशनगढ़ निवासी पुखराजजी कर्नावट धर्म एवं समाज की सेवा में अनुपम रूचि रखते हैं ।

उनकी श्रद्धा-भक्ति प्रशंसनीय हैं । वे शुभ कार्यों में लक्ष्मी का सदुपयोग करते रहते हैं ।

श्रुतज्ञान के प्रति उनका यह अनुराग अनुमोदनीय है । वे स्वयं सात्त्विक जीवन युक्त हैं । उनकी मान्यता है कि सुसंस्कृत जीवन ही मनुष्य भव की सार्थकता है । वे केवल धर्म कार्यों में ही रुचि नहीं लेते, अपितु समय-समय पर तन-मन-धन को भी अर्पण करते रहते हैं ।

वे 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' (द्वितीय खण्ड) का प्रकाशन भी करवा रहे हैं । उनकी इस शुभ भावना के लिए सरल स्वभाविनी वात्सल्यमूर्ति परम पूज्या साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी म. सा. (पू. दादाजी म. सा.) आशीष देती हैं तथा हम उनको धन्यवाद देती हैं । वे भविष्य में भी ऐसे सुकृत कार्यों में सदा योगदान देते रहेंगे, यही हमें आशा हैं ।

— *डॉ. प्रियदर्शनाश्री*

— *डॉ. सुदर्शनाश्री*

8

— डॉ. जवाहरचन्द्र पटनी,

एम. ए. (हिन्दी-अंग्रेजी), पीएच. डी., बी.टी.

विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी विरले सन्त थे। उनके जीवन-दर्शन से यह ज्ञात होता है कि वे लोक मंगल के क्षीर-सागर थे। उनके प्रति मेरी श्रद्धा-भक्ति तब विशेष बढ़ी, जब मैंने कलिकाल कल्पतरू श्री वल्लभसूरिजी पर 'कलिकाल कल्पतरू' महाग्रन्थ का प्रणयन किया, जो पीएच. डी. उपाधि के लिए जोधपुर विश्वविद्यालय ने स्वीकृत किया। विश्वपूज्य प्रणीत 'अभिधान राजेन्द्र कोष' से मुझे बहुत सहायता मिली। उनके पुनीत पद-पद्मों में कोटिशः वन्दन !

फिर पूज्या डॉ. साध्वी द्वय श्री प्रियदर्शनाश्रीजी म. एवं डॉ. श्री सुदर्शनाश्रीजी म. के ग्रन्थ — 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका', 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' [1 से 7 खण्ड], 'विश्वपूज्य' [श्रीमद् राजेन्द्रसूरि : जीवन-सौरभ), 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, कथा-कुसुम', 'सुगन्धित सुमन', 'जीवन की मुस्कान' एवं 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' आदि ग्रन्थों का अवलोकन किया। विदुषी साध्वी द्वय ने विश्वपूज्य की तपश्चर्या, कर्मठता एवं कोमलता का जो वर्णन किया है, उससे मैं अभिभूत हो गया और मेरे सम्मुख इस भोगवादी आधुनिक युग में पुरातन ऋषि-महर्षि का विराट् और विनम्र करुणार्द्र तथा सरल, लोक-मंगल का साक्षात् रूप दिखाई दिया।

श्री विश्वपूज्य इतने दृढ़ थे कि भयंकर झंझावातों और संघर्षों में भी अडिग रहे। सर्वज्ञ वीतराग प्रभु के परमपुनीत स्मरण से वे अपनी नन्हीं देह-किश्ती को उफनते समुद्र में निर्भय चलाते रहें। स्मरण हो आता है, परम गीतार्थ महान् आचार्य मानतुंगसूरिजी रचित महाकाव्य भक्तामर का यह अमर श्लोक —

'अम्भो निधौ क्षुभित भीषण नक्र चक्र,
पाठीन पीठ भय दोल्बण वाडवाग्नौ।
रङ्गत्तरंग शिखर स्थित यान पात्रा —
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ॥'

हे स्वामिन् ! क्षुब्ध बने हुए भयंकर मगरमच्छों के समूह और पाठीन तथा पीठ जाति के मत्स्य व भयंकर वड़वानल अग्नि जिसमें है, ऐसे समुद्र में जिनके जहाज लहरों के अग्रभाग पर स्थित हैं; ऐसे जहाजवाले लोग आपका मात्र स्मरण करने से ही भयरहित होकर निर्विघ्नरूप से इच्छित स्थान पर पहुँचते हैं ।

विदुषी डॉ. साध्वी द्वय ने विश्वपूज्य के विराट् और कोमल जीवन का यथार्थ वर्णन किया है । उससे यह सहज प्रतीति होती है कि विश्वपूज्य कर्मयोगी महर्षि थे, जिन्होंने उस युग में व्याप्त भ्रष्टाचार और आडम्बर को मिटाने के लिए ग्राम-ग्राम, नगर-नगर, वन-उपवन में पैदल विहार किया । व्यसनमुक्त समाज के निर्माण में अपना समस्त जीवन समर्पित कर दिया ।

विदुषी लेखिकाओंने यह बताया है कि इस महर्षि ने व्यक्ति और समाज को सुसंस्कृत करने हेतु सदाचार-सुचरित्र पर बल दिया तथा सत्साहित्य द्वारा भारतीय गौरवशालिनी संस्कृति को अपनाने के लिए अभिप्रेरित किया ।

इस महर्षि ने हिन्दी में भक्तिरस-पूर्ण स्तवन, पद एवं सज्झायादि गीत लिखे हैं । जो सर्वजनहिताय, स्वान्तः सुखाय और भक्तिरस प्रधान हैं । इनकी समस्त कृतियाँ लोकमंगल की अमृत गगरियाँ हैं ।

गीतों में शास्त्रीय संगीत एवं पूजा-गीतों की लावणियाँ हैं जिनमें माधुर्य भरपूर हैं । विश्वपूज्य ने रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा एवं दृष्टान्त आदि अलंकारों का अपने काव्य में प्रयोग किया है, जो अप्रयास है । ऐसा लगता है कि कविता उनकी हृदय वीणा पर सहज ही झंकृत होती थी । उन्होंने यद्यपि स्वान्तः सुखाय गीत रचना की है, परन्तु इनमें लोकमाङ्गल्य का अमृत स्रवित होता है ।

उनके तपोमय जीवन में प्रेम और वात्सल्य की अमी-वृष्टि होती है ।

विश्वपूज्य अर्धमागधी, प्राकृत एवं संस्कृत भाषाओं के अद्वितीय महापण्डित थे । उनकी अमरकृति – 'अभिधान राजेन्द्र कोष' में इन तीन भाषाओं के शब्दों की सारगर्भित और वैज्ञानिक व्याख्याएँ हैं । यह केवल पण्डितवरों का ही चिन्तामणि रत्न नहीं है, अपितु जनसाधारण को भी इस अमृत-सरोवर का [illegible] करके परम तृप्ति का अनुभव होता है । उदाहरण के लिए – जैनधर्म में 'नीवि' और 'गहुँली' शब्द प्रचलित हैं । इन शब्दों की व्याख्या मुझे कहीं भी नहीं मिली । इन शब्दों का समाधान इस कोष में है । 'नीवि' अर्थात् नियमपालन करते हुए विधिपूर्वक आहार लेना । गहुँली गुरु-भगवंतों के शुभागमन पर मार्ग में अक्षत का स्वस्तिक करके उनकी वधामणी करते हैं और गुरुवर के प्रवचन के पश्चात् गीत द्वारा गहुँली गीत गाया जाता है ।

इनकी व्युत्पत्ति-व्याख्या 'अभिधान राजेन्द्र कोष' में मिलीं । पुरातनकाल में गेहूँ का स्वस्तिक करके गुरुजनों का सत्कार किया जाता था । कालान्तर में अक्षत-चावल का प्रचलन हो गया । यह शब्द योगरूढ़ हो गया, इसलिए गुरु भगवंतों के सम्मान में गाया जानेवाला गीत भी गहुँली हो गया । स्वर्ण मोहरों या रत्नों से गहुँली क्यों न हो, वह गहुँली ही कही जाती है । भाषा विज्ञान की दृष्टि से अनेक शब्द जिनवाणी की गंगोत्री में लुढ़क-लुढ़क कर, घिस-घिस कर शालिग्राम बन जाते हैं । विश्वपूज्य ने प्रत्येक शब्द के उद्‌गम-स्रोत की गहन व्याख्या की है । अतः यह कोष वैज्ञानिक है, साहित्यकारों एवं कवियों के लिए रसात्मक है तथा जनसाधारण के लिए शिव-प्रसाद है ।

जब कोष की बात आती है तो हमारा मस्तक हिमगिरि के समान विराट् गुरुवर के चरण-कमलों में श्रद्धावनत हो जाता है । षष्टिपूर्ति के तीन वर्ष बाद 63 वर्ष की वृद्धावस्था में विश्वपूज्य ने **'अभिधान राजेन्द्र कोष'** का श्रीगणेश किया और 14 वर्ष के अनवरत परिश्रम व लगन से 76 वर्ष की आयु में इसे परिसम्पन्न किया ।

इनके इस महत्दान का मूल्याङ्कन करते हुए मुझे महर्षि दधीचि की पौराणिक कथा का स्मरण हो आता है, जिसमें इन्द्र ने देवासुर संग्राम में देवों की हार और असुरों की जय से निराश होकर इस महर्षि से अस्थिदान की प्रार्थना की थी । सत् विजयाकांक्षा की मंगल-भावना से इस महर्षि ने अनशन तप से देह सुखाकर अस्थिदान इन्द्र को दिया था, जिससे वज्रायुध बना । इन्द्र ने वज्रायुध से असुरों को पराजित किया । इसप्रकार सत् की विजय और असत् की पराजय हुई । 'सत्यमेव जयते' का उद्‌घोष हुआ ।

सचमुच यह कोष वज्रायुध के समान सत्य की रक्षा करनेवाला और असत्य का विध्वंस करनेवाला है ।

विदुषी साध्वी द्वय ने इस महाग्रन्थ का मन्थन करके जो अमृत प्राप्त किया है, वह जनता-जनार्दन को समर्पित कर दिया है ।

सारांश में - यह ग्रन्थ 'सत्यं-शिवं-सुंदरम्' की परमोज्ज्वल ज्योति सब युगों में जगमगाता रहेगा — यावत्चन्द्रदिवाकरौ ।

इस कोष की लोकप्रियता इतनी है कि साण्डेराव ग्राम (जिला-पाली-राजस्थान) के लघु पुस्तकालय में भी इसके नवीन संस्करण के सातों भाग विद्यमान हैं । यही नहीं, भारत के समस्त विश्वविद्यालयों, श्रेष्ठ महाविद्यालयों तथा पाश्चात्य देशों के विद्या-संस्थानों में ये उपलब्ध हैं । इनके बिना विश्वविद्यालय और शोध-संस्थान रिक्त लगते हैं ।

विदुषी साध्वी द्वय निःसंदेह यशोपात्रा हैं, क्योंकि उन्होंने विश्वपूज्य के पाण्डित्य को ही अपने ग्रन्थों में नहीं दर्शाया है; अपितु इनके लोक-माङ्गल्य का भी प्रशस्त वर्णन किया है ।

ये महान् कर्मयोगी पत्थरों में फूल खिलाते हुए, मरूभूमि में गंगा-जमुना की पावन धाराएँ प्रवाहित करते हुए, बिखरे हुए समाज को कलह के काँटों से बाहर निकाल कर प्रेम-सूत्र में बाँधते हुए, पीड़ित प्राणियों की वेदना मिटाते हुए, पर्यावरण - शुद्धि के लिए आत्म-जागृति का पाञ्चजन्य शंख बजाते हुए 80 वर्ष की आयु में प्रभु शरण में कल्पपुष्प के समान समर्पित हो गए ।

श्री वाल्मीकि ने रामायण में यह बताया है कि भगवान् राम ने 14 वर्षों के वनवास काल में अछूतों का उद्धार किया, दुःखी-पीड़ित प्राणियों को जीवन-दान दिया, असुर प्रवृत्ति का नाश किया और प्राणि-मैत्री की रसवन्ती गंगधारा प्रवाहित की । इस कालजयी युगवीर आचार्य ने इसीलिए 14 वर्ष कोष की रचना में लगाये होंगे । 14 वर्ष शुभ काल है — मंगल विधायक है । महर्षियों के रहस्य को महर्षि ही जानते हैं ।

लाखों-करोड़ों मनुष्यों का प्रकाश-दीप बुझ गया, परन्तु वह बुझा नहीं है । वह समस्त जगत् के जन-मानसों में करूणा और प्रेम के रूप में प्रदीप्त हैं ।

विदुषी साध्वी द्वय के ग्रन्थों को पढ़कर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि विश्वपूज्य केवल त्रिस्तुतिक आम्नाय के ही जैनाचार्य नहीं थे, अपितु समस्त जैन समाज के गौरव किरीट थे, वे हिन्दुओं के सन्त थे, मुसलमानों के फकीर और ईसाइयों के पादरी । वे जगद्गुरु थे । विश्वपूज्य थे और हैं।

विदुषी डॉ. साध्वी द्वय की भाषा-शैली वसन्त की परिमल के समान मनोहारिणी है । भावों को कल्पना और अलंकारों से इक्षुरस के समान मधुर बना दिया है । समरसता ऐसी है जैसे — सुरसरि का प्रवाह ।

दर्शन की गम्भीरता भी सहज और सरल भाषा-शैली से सरस बन गयी है ।

इन विदुषी साध्वियों के मंगल-प्रसाद से समाज सुसंस्कारों के प्रशस्त-पथ पर अग्रसर होगा । भविष्य में भी ये साध्वियाँ तृष्णा तृषित आधुनिक युग को अपने जीवन-दर्शन एवं सत्साहित्य के सुगन्धित सुमनों से महकाती रहेंगी ! यही शुभेच्छा !

पूज्या साध्वीजी द्वय को विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वरजी म. सा. की पावन प्रेरणा प्राप्त हुई, इससे इन्होंने इन अभिनव ग्रन्थों का प्रणयन किया ।

यह सच है कि रवि-रश्मियों के प्रताप से सरोवर में सरोज सहज ही प्रस्फुटित होते हैं। वासन्ती पवन के हलके से स्पर्श से सुमन सौरभ सहज ही प्रसृत होते हैं। ऐसी ही विश्वपूज्य के वात्सल्य की परिमल इनके ग्रन्थों को सुरभित कर रही हैं। उनकी कृपा इनके ग्रन्थों की आत्मा है।

जिन्हें महाज्ञानी साहित्यमनीषी राष्ट्रसन्त प. पू. आचार्यदेवेश श्रीमद्जयन्तसेनसूरीश्वरजी म. सा. का आर्शीवाद और परम पूज्या जीवन निर्मात्री (सांसारिक दादीजी) साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी म. का अमित वात्सल्य प्राप्त हों, उनके लिए ऐसे ग्रन्थों का प्रणयन सहज और सुगम क्यों न होगा ? निश्चय ही।

वात्सल्य भाव से मुझे आमुख लिखने का आदेश दिया पूज्या साध्वी द्वय ने। उसके लिए आभारी हूँ, यद्यपि मैं इसके योग्य किञ्चित् भी नहीं हूँ। इति शुभम् !

पौष शुक्ला सप्तमी
5 जनवरी, 1998
कालन्द्री
जिला-सिरोही (राज.)

पूर्वप्राचार्य
श्री पार्श्वनाथ उम्मेद कॉलेज,
फालना (राज.)

9

वक्तव्य

— *डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी*

(पद्म विभूषण, पूर्व भारतीय राजदूत-ब्रिटेन)

आदरणीया डॉ. प्रियदर्शनाजी एवं डॉ. सुदर्शनाजी साध्वीद्वय ने "विश्वपूज्य' (श्रीमद् राजेन्द्रसूरि : जीवन-सौरभ)', "अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्तिसुधारस" (1 से 7 खण्ड), एवं अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका" की रचना में जैन परम्परा की यशोगाथा की अमृतमय प्रशस्ति की है। ये ग्रंथ विदुषी साध्वी-द्वय की श्रद्धा, निष्ठा, शोध एवं दृष्टि-सम्पन्नता के परिचायक एवं प्रमाण हैं। एक प्रकार से इस ग्रंथत्रयी में जैन-परम्परा की आधारभूत रत्नत्रयी का प्रोज्ज्वल प्रतिबिम्ब है। युगपुरुष, प्रज्ञामहर्षि, मनीषी आचार्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी के व्यक्तित्व और कृतित्व के विराट् क्षितिज और धरातल की विहंगम छवि प्रस्तुत करते हुए साध्वी-द्वय ने इतिहास के एक शलाकापुरुष की यश-प्रतिमा की संरचना की है, उनकी अप्रतिम उपलब्धियों के ज्योतिर्मय अध्याय को प्रदीप्त और रेखांकित किया है। इन ग्रंथों की शैली साहित्यिक है, विवेचन विश्लेषणात्मक है, संप्रेषण रस-सम्पन्न एवं मनोहारी है और रेखांकन कलात्मक है।

पुण्य श्लोक प्रातःस्मरणीय आचार्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी अपने जन्म के नाम के अनुसार ही वास्तव में 'रत्नराज' थे। अपने समय में वे जैनपरम्परा में ही नहीं बल्कि भारतीय विद्या के विश्रुत विद्वान् एवं विद्वत्ता के शिरोमणि थे। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व में सागर की गहराई और पर्वत की ऊँचाई विद्यमान थी। इसीलिए उनको विश्वपूज्य के अलंकरण से विभूषित करते हुए वह अलंकरण ही अलंकृत हुआ। भारतीय वाङ्मय में "अभिधान राजेन्द्र कोष" एक अद्वितीय, विलक्षण और विराट् कीर्तिमान है जिसमें संस्कृत, प्राकृत एवं अर्धमागधी की त्रिवेणी भाषाओं और उन भाषाओं में प्राप्त विविध परम्पराओं की सूक्तियों की सरल और सांगोपांग व्याख्याएँ हैं, शब्दों का विवेचन और दार्शनिक संदर्भों की अक्षय सम्पदा है। लगभग ६० हजार शब्दों की व्याख्याओं एवं साढ़े चार लाख श्लोकों के ऐश्वर्य से महिमामंडित यह ग्रंथ जैन परम्परा एवं समग्र भारतीय विद्या का अपूर्व भंडार है। साध्वीद्वय डॉ. प्रियदर्शनाश्री एवं डॉ. सुदर्शनाश्री की यह प्रस्तुति एक ऐसा साहसिक सारस्वत

प्रयास है जिसकी सराहना और प्रशस्ति में जितना कहा जाय वह स्वल्प ही होगा, अपर्याप्त ही माना जायगा। उनके पूर्वप्रकाशित ग्रंथ "आनंदघन का रहस्यवाद" एवं आचारांग सूत्र का नीतिशास्त्रीय अध्ययन" प्रत्यूष की तरह इन विदुषी साध्वियों की प्रतिभा की पूर्व सूचना दे रहे थे। विश्व पूज्य की अमर स्मृति में साधना के ये नव दिव्य पुष्प अरुणोदय की रश्मियों की तरह हैं।

24-4-1998
4F, White House,
10, Bhagwandas Road,
New Delhi-110001

— *पं. दलसुख मालवणिया*

पूज्या डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. सुदर्शनाश्रीजी साध्वीद्वयने "अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका" एवं "अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस" (1 से 7 खण्ड), आदि ग्रन्थ लिखकर तैयार किए हैं, जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं गौरवमयी रचनाएँ हैं। उनका यह अथक प्रयास स्तुत्य है। साध्वीद्वय का यह कार्य उपयोगी तो है ही, तदुपरान्त जिज्ञासुजनों के लिए भी उपकारक हो, वैसा है।

इसप्रकार जैनदर्शन की सरल और संक्षिप्त जानकारी अन्यत्र दुर्लभ है। जिज्ञासु पाठकों को जैनधर्म के सद् आचार-विचार, तप-संयम, विनय-विवेक विषयक आवश्यक ज्ञान प्राप्त हो जाय, वैसी कृतियाँ हैं।

पूज्या साध्वीद्वय द्वारा लिखित इन कृतियों के माध्यम से मानव-समाज को जैनधर्म-दर्शन सम्बन्धी एक दिशा, एक नई चेतना प्राप्त होगी।

ऐसे उत्तम कार्य के लिए साध्वीद्वय का जितना उपकार माना जाय, वह स्वल्प ही होगा।

दिनांक : 30-4-98
माधुरी-8,
आपेरा सोसायटी, पालड़ी,
अहमदाबाद-380007

११

सूक्ति-सुधारस : मेरी दृष्टि में

— डॉ. नेमीचन्द जैन
संपादक "तीर्थंकर"

'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' के एक से सात खण्ड तक में, मैं गोते लगा सका हूँ। आनन्दित हूँ । रस-विभोर हूँ । कवि बिहारी के दोहे की एक पंक्ति बार-बार आँखों के सामने आ-जा रही है : "बूड़े अनबूड़े, तिरे जे बूड़े सब अंग" । जो डूबे नहीं, वे डूब गये हैं और जो डूब सके हैं सिर-से-पैर तक वे तिर गये हैं । अध्यात्म, विशेषतः श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वरजी के 'अभिधान राजेन्द्र कोष' का यही आलम है । डूबिये, तिर जाएँगे; सतह पर रहिये, डूब जाएँगे ।

वस्तुतः 'अभिधान राजेन्द्र कोष' का एक-एक वर्ण बहुमुखीता का धनी है। यह अप्रतिम कृति 'विश्वपूज्य' का 'विश्वकोश' (एन्सायक्लोपीडिया) है। जैसे-जैसे हम इसके तलातल का आलोड़न करते हैं, वैसे-वैसे जीवन की दिव्य छबियाँ थिरकती-ठुमकती हमारे सामने आ खड़ी होती हैं। हमारा जीवन सर्वोत्तम से संवाद बनने लगता है ।

'अभिधान राजेन्द्र' में संयोगतः सम्मिलित सूक्तियाँ ऐसी सूक्तियाँ हैं, जिनमें श्रीमद् की मनीषा-स्वाति ने दुर्लभ/दीप्तिमन्त मुक्ताओं को जन्म दिया है। ये सूक्तियाँ लोक-जीवन को माँजने और उसे स्वच्छ-स्वस्थ दिशा-दृष्टि देने में अद्वितीय हैं। मुझे विश्वास है कि साध्वीद्वय का यह प्रथम पुरुषार्थ उन तमाम सूक्तियों को, जो 'अभिधान राजेन्द्र' में प्रसंगतः समाविष्ट हैं, प्रस्तुत करने में सफल होगा। मेरे विनम्र मत में यदि इनमें-से कुछेक सूक्तियों का मन्दिरों, देवालयों, स्वाध्याय-कक्षों, स्कूल-कॉलेजों की भित्तियों पर अंकन होता है तो इससे हमारी धार्मिक असंगतियों को तो एक निर्मल कायाकल्प मिलेगा ही, राष्ट्रीय चरित्र को भी नैतिक उठान मिलेगा। मैं न सिर्फ २६६७ सूक्तियों के ७ बृहत् खण्डों की प्रतीक्षा करूँगा, अपितु चाहूँगा कि इन सप्त सिन्धुओं के सावधान परिमन्थन से कोई 'राजेन्द्र सूक्ति नवनीत' जैसी लघुपुस्तिका सूरज की पहली किरण देखे। ताकि संतप्त मानवता के घावों पर चन्दन-लेप संभव हो ।

27-04-1998
65, पत्रकार कालोनी, कनाड़िया मार्ग,
इन्दौर (म.प्र.)-452001

12

— डॉ. सागरमल जैन
पूर्व निर्देशक पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' (१ से ७ खण्ड) नामक इस कृति का प्रणयन पूज्या साध्वीश्री डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. सुदर्शनाश्रीजी ने किया है । वस्तुतः यह कृति अभिधानराजेन्द्रकोष में आई हुई महत्त्वपूर्ण सूक्तियों का अनूठा आलेखन हैं । लगभग एक शताब्दि पूर्व ईस्वीसन् १८९० आश्विन शुक्ला दूज के दिन शुभ लग्न में इस कोष ग्रन्थ का प्रणयन प्रारम्भ हुआ और पूज्य आचार्य भगवन्त श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी के अथक प्रयासों से लगभग १४ वर्ष में यह पूर्ण हुआ फिर इसके प्रकाशन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई जो पुनः १७ वर्षो में पूर्ण हुई । जैनधर्म सम्बन्धी विश्वकोषों में यह कोष ग्रन्थ आज भी सर्वोपरि स्थान रखता है । प्रस्तुत कोष में जैन धर्म, दर्शन, संस्कृति और साहित्य से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण शब्दों का अकारादि क्रम से विस्तारपूर्वक विवेचन उपलब्ध होता है । इस विवेचना में लगभग शताधिक ग्रन्थों से सन्दर्भ चुने गये हैं । प्रस्तुत कृति में साध्वी-द्वय ने इसी कोषग्रन्थ को आधार बनाकर सूक्तियों का आलेखन किया हैं । उन्होंने अभिधान राजेन्द्र कोष के प्रत्येक खण्ड को आधार मानकर इस 'सूक्ति-सुधारस' को भी सात खण्डों में ही विभाजित किया हैं । इसके प्रथम खण्ड में अभिधान राजेन्द्र कोष के प्रथम भाग से सूक्तियों का आलेखन किया है । यही क्रम आगे के खण्डों में भी अपनाया गया हैं । 'सूक्ति-सुधारस' के प्रत्येक खण्ड का आधार अभिधान राजेन्द्र कोष का प्रत्येक भाग ही रहा हैं । अभिधान राजेन्द्र कोष के प्रत्येक भाग को आधार बनाकर सूक्तियों का संकलन करने के कारण सूक्तियों को न तो अकारादिक्रम से प्रस्तुत किया गया है और न उन्हें विषय के आधार पर ही वर्गीकृत किया गया हैं, किन्तु पाठकों की सुविधा के लिए परिशिष्ट में अकारादिक्रम से एवं विषयानुक्रम से शब्द-सूचियाँ दे दी गई हैं, इससे जो पाठक अकारादि क्रम से अथवा विषयानुक्रम से इन्हें जानना चाहे उन्हें भी सुविधा हो सकेगी । इन परिशिष्टों के माध्यम से प्रस्तुत कृति अकारादिक्रम अथवा विषयानुक्रम की कमी की पूर्ति कर देती है । प्रस्तुतकृति में प्रत्येक

सूक्ति के अन्त में अभिधान राजेन्द्र कोष के सन्दर्भ के साथ-साथ उस मूल ग्रन्थ का भी सन्दर्भ दे दिया गया है, जिससे ये सूक्तियाँ अभिधान राजेन्द्र कोष में अवतरित की गई। मूलग्रन्थों के सन्दर्भ होने से यह कृति शोध-छात्रों के लिए भी उपयोगी बन गई हैं।

वस्तुतः सूक्तियाँ अतिसंक्षेप में हमारे आध्यात्मिक एवं सामाजिक जीवन मूल्योंको उजागर कर व्यक्ति को सम्यक्जीवन जीने की प्रेरणा देती हैं। अतः ये सूक्तियाँ जन साधारण और विद्वत् वर्ग सभी के लिए उपयोगी हैं। आबाल-वृद्ध उनसे लाभ उठा सकते हैं। साध्वीद्वय ने परिश्रमपूर्वक जो इन सूक्तियों का संकलन किया है वह अभिधान राजेन्द्र कोष रूपी महासागर से रत्नों के चयन के जैसा हैं। प्रस्तुत कृति में प्रत्येक सूक्ति के अन्त में उसका हिन्दी भाषा में अर्थ भी दे दिया गया है, जिसके कारण प्राकृत और संस्कृत से अनभिज्ञ सामान्य व्यक्ति भी इस कृति का लाभ उठा सकता हैं। इन सूक्तियों के आलेखन में लेखिका-द्वय ने न केवल जैनग्रन्थों में उपलब्ध सूक्तियों का संकलन/संयोजन किया है, अपितु वेद, उपनिषद्, गीता, महाभारत, पंचतन्त्र, हितोपदेश आदि की भी अभिधान राजेन्द्र कोष में गृहीत सूक्तियों का संकलन कर अपनी उदारहृदयता का परिचय दिया है। निश्चय ही इस महनीय श्रम के लिए साध्वी-द्वय-पूज्या डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. सुदर्शनाश्रीजी साधुवाद की पात्रा हैं। अन्त में मैं यही आशा करता हूँ कि जन सामान्य इस 'सूक्ति-सुधारस' में अवगाहन कर इसमें उपलब्ध सुधारस का आस्वादन करता हुआ अपने जीवन को सफल करेगा और इसी रूप में साध्वी द्वय का यह श्रम भी सफल होगा।

दिनांक 31-6-1998
पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध-संस्थान
वाराणसी (उ.प्र.)

13

मन्तव्य

विद्याव्रती
शास्त्र सिद्धान्त रहस्य विद् ?
— पं. गोविन्दराम व्यास

उक्तियाँ और सूक्त-सूक्तियाँ वाङ्‌मय वारिधि की विवेक वीचियाँ हैं। विद्या संस्कार विमर्शिता विगत की विवेचनाएँ हैं । विवर्द्धित-वाङ्मय की वैभवी विचारणाएँ हैं । सार्वभौम सत्य की स्तुतियाँ हैं । प्रत्येक पल की परमार्शदायिनी-पारदर्शिनी प्रज्ञा पारमिताएँ हैं । समाज, संस्कृति और साहित्य की सरसता की छवियाँ हैं । क्रान्तदर्शी कोविदों की पारदर्शिनी परिभाषाएँ हैं। मनीषियों की मनीषा की महत्त्व प्रतिपादिनी पीपासाएँ हैं । क्रूर-काल के कौतुकों में भी आयुष्मती होकर अनागत का अवबोध देती रही हैं । ऐसी सूक्तियों को सश्रद्ध नमन करता हुआ वागृदेवता का विद्या-प्रिय विप्र होकर वाङ् मयी पूजा में प्रयोगवान् बन रहा हूँ ।

श्रमण-संस्कृति की स्वाध्याय में स्वात्म-निष्ठ निराली रही है । आचार्य हरिभद्र, अभय, मलय जैसे मूर्धन्य महामतिमान्, सिद्धसेन जैसे शिरोमणि, सक्षम, श्रद्धालु जिनभद्र जैसे - क्षमाश्रमणों का जीवन वाङ्‌मयी वरिवस्या का विशेष अंग रहा है ।

स्वाध्याय का शोभनीय आचार अद्यावधि-हमारे यहाँ अक्षुण्ण पाया जाता है । इसीलिए स्वाध्याय एवं प्रवचन में अप्रमत्त रहने का समादश शास्त्रकारों ने स्वीकार किया है ।

वस्तुतः नैतिक मूल्यों के जागरण के लिए, आध्यात्मिक चेतना के ऊर्ध्वीकरण के लिए एवं शाश्वत मूल्यों के प्रतिष्ठापन के लिए आर्याप्रवरा द्वय द्वारा रचित प्रस्तुत ग्रन्थ 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका' एक उपादेय महत्त्वपूर्ण गौरवमयी रचना है ।

आत्म-अभ्युदयशीला, स्वाध्याय-परायणा, सतत अनुशीलन उज्ज्वला आर्या डॉ. श्री प्रियदर्शनाजी एवं डॉ. श्री सुदर्शनाजी की शास्त्रीय-साधना सराहनीया है । इन्होंने अपने आम्नाय के आद्य-पुरुष की प्रतिभा का परिचय प्राप्त करने का प्रयास कर अपनी चारित्र-सम्पदा को वाङ्‌मयी साधना में

समर्पिता करती हुई 'विश्वपूज्य' (श्रीमद् राजेन्द्रसूरि : जीवन-सौरभ') का रहस्योद्घाटन किया है ।

विदुषी श्रमणी द्वय ने प्रस्तुत कृति 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' (1 से 7 खण्ड) को कोषों के कारागारों से मुक्तकर जीवन की वाणी में विशद करने का विश्वास उपजाया है । अतः आर्या युगल, इसप्रकार की वाङ्मयी-भारती भक्ति में भूषिता रहें एवं आत्मतोष में तोषिता होकर सारस्वत इतिहास की असामान्या विदुषी बनकर वाङ्मय के प्रांगण की प्रोन्नता भूमिका निभाती रहें । यही मेरा आत्मीय अमोघ आशीर्वाद है ।

इनका विद्या-विवेकयोग, श्रुतों की समाराधना में अच्युत रहे, अपनी निरहंकारिता को अतीव निर्मला बनाता रहे और उत्तरोत्तर समुत्साह-समुन्नत होकर स्वान्तः सुख को समुल्लसित रचता रहे । यही सदाशया शोभना शुभाकांक्षा है ।

चैत्रसुदी 5 बुध
1 अप्रैल, 98
हरजी
जिला - जालोर (राज.)

— *पं. जयनंदन झा,*
व्याकरण साहित्याचार्य,
साहित्य रत्न एवं शिक्षाशास्त्री

मनुष्य विधाता की सर्वोत्तम सृष्टि है। वह अपने उदात्त मानवीय गुणों के कारण सारे जीवों में उत्तरोत्तर चिन्तनशील होता हुआ विकास की प्रक्रिया में अनवरत प्रवर्धमान रहा है। उसने पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति ही जीवन का परम ध्येय माना है, पर ज्ञानीजन ने इस संसार को ही परम ध्येय न मानकर अध्यात्म ज्ञान को ही सर्वोपरि स्थान दिया है। अतः जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष-प्राप्ति में धर्म, अर्थ और काम को केवल साधन मात्र माना है।

इसलिये अध्यात्म चिन्तन में भारत विश्वमंच पर अति श्रद्धा के साथ प्रशंसित रहा है। इसकी धर्म सहिष्णुता अनोखी एवं मानवमात्र के लिये अनुकरणीय रही है। यहाँ वैष्णव, जैन तथा बौद्ध धर्माचार्यों ने मिलकर धर्म की तीन पवित्र नदियों का संगम "त्रिवेणी" पवित्र तीर्थ स्थापित किया है जहाँ सारे धर्माचार्य अपने-अपने चिन्तन से सामान्य मानव को भी मिल-बैठकर धर्मचर्चा के लिये विवश कर देते हैं। इस क्षेत्र में किस धर्म का कितना योगदान रहा है, यह निर्णय करना अल्प बुद्धि साध्य नहीं है।

पर, इतना निर्विवाद है कि जैन मनीषी और सन्त अपनी-अपनी विशिष्ट विशेषताओं के लिये आत्मोत्कर्ष के क्षेत्र में तपे हुए मणि के समान सहस्र-सूर्य-किरण के कीर्तिस्तम्भ से भारतीय दर्शन को प्रोद्भासित कर रहे हैं, जो काल की सीमा से रहित है। जैनधर्म व दर्शन शाश्वत एवं चिरन्तन है, जो विविध आयामों से इसके अनेकान्तवाद को परिभाषित एवं पुष्ट कर रहे हैं। ज्ञान और तप तो इसकी अक्षय निधि है।

जैन धर्म में भी मन्दिर मार्गी-त्रिस्तुतिक परम्परा के सर्वोत्कृष्ट साधक जैनधर्माचार्य "श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वरजी म. सा. अपनी तपःसाधना और ज्ञानमीमांसा से परमपूत होने के कारण सार्वकालिक सार्वजनीन वन्द्य एवं प्रातः स्मरणीय भी हैं जिनका सम्पूर्ण जीवन सर्वजन हिताय एवं सर्वजन सुखाय समर्पित रहा है। इनका सम्पूर्ण-जीवन अथाह समुद्र की भाँति है, जहाँ निरन्तर गोता लगाने

पर केवल रत्न की ही प्राप्ति होती है, पर यह अमूल्य रत्न केवल साधक को ही मिल पाता है। साधक की साधना जब उच्च कोटि की हो जाती है तब साध्य संभव हो पाता है। राजेन्द्र कोष तो इनकी अक्षय शब्द मंजूषा है, जो शब्द यहाँ नहीं है, वह अन्यत्र कहीं नहीं है।

ऐसे महान् मनीषी एवं सन्त को अक्षरशः समझाने के लिये डॉ. प्रियदर्शनाश्री जी एवं डॉ. सुदर्शनाश्री जी साध्वीद्वय ने (१) अभिधान राजेन्द्र कोष में, "सूक्ति-सुधारस" (१ से ७ खण्ड) (२) अभिधान राजेन्द्र कोष में, "जैनदर्शन वाटिका" तथा (३) 'विश्वपूज्य' (श्रीमद् राजेन्द्र सूरि : जीवन-सौरभ) इन अमूल्य ग्रन्थों की रचना कर साधक की साधना को अतीव सरल बना दिया है। परम पूज्या ! साध्वीद्वय ने इन ग्रन्थों की रचना में जो अपनी बुद्धिमत्ता एवं लेखन-चातुर्य का परिचय दिया है वह स्तुत्य ही नहीं; अपितु इस भौतिकवादी युग में जन-जन के लिये अध्यात्मक्षेत्र में पाथेय भी बनेगा। मैंने इन ग्रन्थों का विहंगम अवलोकन किया है। भाषा की प्रांजलता और विषयबोध की सुगमता तो पाठक को उत्तरोत्तर अध्ययन करने में रूचि पैदा करेगी, वह सहज ही सबके लिये हृदयग्राहिणी बनेगी। यही लेखिकाद्वय की लेखनी की सार्थकता बनेगी।

अन्त में यहाँ यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि "रघुवंश" महाकाव्य-रचना के प्रारंभ में कालिदास ने लिखा है कि "तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्" पर वही कालिदास कवि सम्राट् कहलाये। इसीतरह आप दोनों का यह परम लोकोपकारी अथक प्रयास भौतिकवादी मानवमात्र के लिये शाश्वत शान्ति प्रदान करने में सहायक बन पायेगा। इति। शुभम्।

25-7-98
3घ - 12 मधुबन हा. बो.
बासनी, जोधपुर

पं. हीरालाल शास्त्री
एम.ए.

विदुषी साध्वीद्वय डॉ. प्रियदर्शना श्री एम. ए., पीएच. डी. एवं डॉ. सुदर्शनाश्री एम. ए. पीएच. डी. द्वारा रचित ग्रन्थ 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' (1 से 7 खण्ड) सुभाषित सूक्तियों एवं वैदुष्यपूर्ण हृदयग्राही वाक्यों के रूप में एक पीयूष सागर के समान है ।

आज के गिरते नैतिक मूल्यों, भौतिकवादी दृष्टिकोण की अशान्ति एवं तनावभरे सांसारिक प्राणी के लिए तो यह एक रसायन है, जिसे पढ़कर आत्मिक शान्ति, दृढ इच्छा-शक्ति एवं नैतिक मूल्यों की चारित्रिक सुरभि अपने जीवन के उपवन में व्यक्ति एवं समष्टि की उदात्त भावनाएँ गहगहायमान हो सकेगी, यह अतिशयोक्ति नहीं, एक वास्तविकता है ।

आपका प्रयास स्वान्तःसुखाय लोकहिताय है । 'सूक्ति-सुधारस' जीवन में संघर्षों के प्रति साहस से अडिग रहने की प्रेरणा देता है ।

ऐसे सत्साहित्य 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की महक से व्यक्ति को जीवंत बनाकर आध्यात्मिक शिवमार्ग का पथिक बनाते हैं ।

आपका प्रयास भगीरथ प्रयास है ।

भविष्य में शुभ कामनाओं के साथ ।

महावीर जन्म कल्याणक, गुरुवार
दि. 9 अप्रैल, 1998
ज्योतिष-सेवा
राजेन्द्रनगर
जालोर (राज.)

निवृत्तमान संस्कृत व्याख्याता
राज. शिक्षा-सेवा
राजस्थान

— डॉ. अखिलेशकुमार राय

साध्वीद्वय डो. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डो. सुदर्शनाश्रीजी द्वारा रचित प्रस्तुत ुस्तक का मैंने आद्योपान्त अवलोकन किया है। इनकी रचना 'सूक्ति-सुधारस' i से 7 खण्ड) में श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वर जी की अमरकृति 'अभिधान राजेन्द्र ोष' के प्रत्येक भाग को आधार बनाकर कुछ प्रमुख सूक्तियों का सुंदर-सरस सरल हिन्दी भाषा में अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। साध्वीद्वय का यह कल्प है कि 'अभिधान राजेन्द्र कोष' में उपलब्ध लगभग २७०० सूक्तियों ा सात खण्डों में संचयन कर सर्वसाधारण के लिये सुलभ कराया जाय। सप्रकार का अनूठा संकल्प अपने आपमें अद्वितीय कहा जा सकता है। मेरा श्वास है कि ऐसी सूक्ति सम्पन्न रचनाओं से पाठकगण के चरित्र निर्माण ो दिशा निर्धारित होगी।

अब सुहृद्जनों का यह पुनीत कर्तव्य है कि वे इसे अधिक से अधिक ोगों के पठनार्थ सुलभ करायें। मैं इस महत्त्वपूर्ण रचना के लिये साध्वीद्वय ो सराहना करता हूँ; इन्हें साधुवाद देता हूँ और यह शुभकामना प्रकट करता कि ये इसप्रकार की और भी अनेक रचनायें समाज को उपलब्ध करायें।

नांक 9 अप्रैल, 1998
त्र शुक्ला त्रयोदशी
/1 प्रोफेसर कालोनी,
हाराजा कोलेज,
तरपुर (म.प्र.)

— *डॉ. अमृतलाल गाँधी*
सेवानिवृत्त प्राध्यापक,

सम्यग्ज्ञान की आराधना में समर्पिता विदुषी साध्वीद्वय डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी म. एवं डॉ. सुदर्शना श्रीजी म. ने 'सूक्ति-सुधारस' (1 से 7 खण्ड) की 2667 सूक्तियों में अभिधान राजेन्द्र कोष के मन्थन का मक्खन सरल हिन्दी भाषा में प्रस्तुत कर जनसाधारण की सेवार्थ यह ग्रन्थ लिखकर जैन साहित्य के विपुल ज्ञान भण्डार में सराहनीय अभिवृद्धि की है। साध्वीद्वय ने कोष के सात भागों की सूक्तियों / सुकथनों की अलग-अलग सात खण्डों में व्याख्या करने का सफल सुप्रयास किया है, जिसकी मैं सराहना एवं अनुमोदना करते हुए स्वयं को भी इस पवित्र ज्ञानगंगा की पवित्र धारा में आंशिक सहभागी बनाकर सौभाग्यशाली मानता हूँ।

वस्तुतः अभिधान राजेन्द्र कोष पयोनिधि है। पूज्या विदुषी साध्वीद्वयने सूक्ति-सुधारस रचकर एक ओर कोष की विश्वविख्यात महिमा को उजागर किया है और दूसरी ओर अपने शुभ श्रम, मौलिक अनुसंधान दृष्टि, अभिनव कल्पना और हंस की तरह मुक्ताचयन की विवेकशीलता का परिचय दिया है।

मैं उनको इस महान् कृति के लिए हार्दिक बधाई देता हूँ।

दिनांक : 16 अप्रैल, 1998
738, नेहरूपार्क रोड,
जोधपुर (राजस्थान)

जयनारायण व्यास विश्व विद्यालय,
जोधपुर

— भागचन्द जैन कवाड
प्राध्यापक (अंग्रेजी)

प्रस्तुत ग्रंथ "अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस" (1 से 7 खण्ड) 5 परिशिष्टों में विभक्त 2667 सूक्तियों से युक्त एक बहुमूल्य एवं अमृत कणों से परिपूर्ण ग्रन्थ है। विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी द्वारा प्रस्तुत ग्रन्थ में अन्यान्य उपयोगी जीवन दर्शन से सम्बन्धित विषयों का समावेश किया गया है। उदाहरण स्वरूप जीवनोपयोगी, नैतिकता तथा आध्यात्मिक जगत् को स्पर्श करने वाले विषय यथा – 'धर्म में शीघ्रता', 'आत्मवत् चाहो', 'समाधि', 'किञ्चिद् श्रेयस्कर', 'अकथा', 'क्रोध परिणाम', 'अपशब्द', सच्चा भिक्षु, धीर साधक, पुण्य कर्म, अजीर्ण, बुद्धियुक्त वाणी, बलप्रद जल, सच्चा आराधक, ज्ञान और कर्म, पूर्ण आत्मस्थ, दुर्लभ मानव-भव, मित्र-शत्रु कौन ?, कर्त्ता-भोक्ता आत्मा, रत्नपारखी, अनुशासन, कर्म विपाक, कल्याण कामना, तेजस्वी वचन, सत्योपदेश, धर्मपात्रता, स्याद्वाद आदि।

सर्वत्र ग्रन्थ में अमृत-कणों का कलश छलक रहा है तथा उनकी सुवास व्याप्त है जो पाठक को भाव विभोर कर देती है, वह कुछ क्षणों के लिए अतिशय आत्मिक सुख में लीन हो जाता है। विदुषी महासतियाँ द्वय डॉ. प्रियदर्शना श्री जी एवं डॉ. सुदर्शना श्री जी ने अपनी प्रखर लेखनी के द्वारा गूढ़तम विषयों को सरलतम रूप से प्रस्तुत कर पाठकों को सहज भाव से सुधा का पान कराया है। धन्य है उनकी अथक साधना लगन व परिश्रम का सुफल जो इस धरती पर सर्वत्र आलोक किरणें बिखेरेगा और धन्य एवं पुलकित हो उठेंगे हम सब।

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी
दिनांक 9 अप्रैल 1998
अजय निवास,
कचहरी रोड,
किशनगढ़ शहर (राज.)

अग्रवाल गर्ल्स कोलेज
मदनगंज (राज.)

दर्पण

19

'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' ग्रन्थ का प्रकाशन 7 खण्डों
हुआ है। प्रथम खण्ड में 'अ' से 'ह' तक के शीर्षकों के अन्तर्गत सूक्तियाँ
ोयी गई हैं। अन्त में अकारादि अनुक्रमणिका दी गई हैं। प्रायः यही क्रम
क्ति सुधारस' के सातों खण्डों में मिलेगा। शीर्षकों का अकारादि क्रम है।
र्क सूची विषयानुक्रम आदि हर खण्ड के अन्त में परिशिष्ट में दी गई है।
क के लिए परिशिष्ट में उपयोगी सामग्री संजोयी गई है। प्रत्येक खण्ड में
परिशिष्ट हैं। प्रथम परिशिष्ट में अकारादि अनुक्रमणिका, द्वितीय परिशिष्ट में
यानुक्रमणिका, तृतीय परिशिष्ट में अभिधान राजेन्द्र : पृष्ठ संख्या, अनुक्रमणिका,
र्थ परिशिष्ट में जैन एवं जैनेतर ग्रन्थः गाथा/श्लोकादि अनुक्रमणिका और
म परिशिष्ट में 'सूक्ति-सुधारस' में प्रयुक्त सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची दी गई है।
खण्ड में यही क्रम मिलेगा। 'सूक्ति-सुधारस' के प्रत्येक खण्ड में सूक्ति
क्रम इसप्रकार रखा गया है कि सर्व प्रथम सूक्ति का शीर्षक एवं मूल सूक्ति
गई है। फिर वह सूक्ति अभिधान राजेन्द्र कोष के किस भाग के किस
से उद्धृत है। सूक्ति-आधार ग्रन्थ कौन-सा है ? उसका नाम और वह
ाँ आयी है, वह दिया है। अन्त में सूक्ति का हिन्दी भाषा में सरलार्थ दिया
ा है।

सूक्ति-सुधारस के प्रथम खण्ड में 251 सूक्तियाँ हैं।
सूक्ति-सुधारस के द्वितीय खण्ड में 259 सूक्तियाँ हैं।
सूक्ति-सुधारस के तृतीय खण्ड में 289 सूक्तियाँ हैं।
सूक्ति-सुधारस के चतुर्थ खण्ड में 467 सूक्तियाँ हैं।
सूक्ति-सुधारस के पंचम खण्ड में 471 सूक्तियाँ हैं।
सूक्ति-सुधारस के षष्टम खण्ड में 607 सूक्तियाँ हैं।
सूक्ति-सुधारस के सप्तम खण्ड में 323 सूक्तियाँ हैं।

कुल मिलाकर 'सूक्ति सुधारस' के सप्त खण्डों में 2667 सूक्तियाँ हैं।
ग्रन्थ में न केवल जैनागमों व जैन ग्रन्थों की सूक्तियाँ हैं, अपितु वेद,

उपनिषद, गीता, महाभारत, आयुर्वेद शास्त्र, ज्योतिष, नीतिशास्त्र, पुराण, स्मृति, पंचतन्त्र, हितोपदेश आदि ग्रन्थों की भी सूक्तियाँ हैं ।

1. विश्वपूज्य प्रणीत सम्पूर्ण वाङ्मय
2. लेखिका द्वय की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ

‘विश्वपूज्यः’ जीवन–दर्शन

20

महिमामण्डित बहुरत्नावसुन्धरा से समलंकृत परम पावन भारतभूमि की वीर प्रसविनी राजस्थान की ब्रजधरा भरतपुर में सन् 1827 - 3 दिसम्बर को पौष शुक्ला सप्तमी, गुरुवार के शुभ दिन एक दिव्य नक्षत्र संतशिरोमणि विश्वपूज्य आचार्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी ने जन्म लिया, जिन्होंने अस्सी वर्ष की आयु तक लोकमाङ्गल्य की गंगधारा समस्त जगत् में प्रवाहित की ।

उनका जीवन भारतीय संस्कृति को पुनर्जीवित करने के लिए समर्पित हुआ ।

वह युग अँग्रेजी राज्य की धूमिल घन घटाओं से आच्छादित था। पाश्चात्त्य संस्कृति की चकाचौंध ने भारत की सरल आत्मा को कुण्ठित कर दिया था। नव पीढ़ी ईसाई मिशनरियों के धर्मप्रचार से प्रभावित हो गई थी। अँग्रेजी शासन में पद-लिप्सा के कारण शिक्षित युवापीढ़ी अतिशय आकर्षित थी ।

ऐसे अन्धकारमय युग में भारतीय संस्कृति की गरिमा को अक्षुण्ण रखने के लिए जहाँ एक ओर राजा राममोहनराय ने ब्रह्मसमाज की स्थापना की, तो दूसरी ओर दयानन्द सरस्वती ने वैदिक धर्म का शंखनाद किया। उसी युग में पुनर्जागरण के लिए प्रार्थना समाज और एनी बेसेन्ट ने थियोसोफिकल सोसायटी की स्थापना की। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम को अँग्रेजी शासन की तोपों ने कुचल दिया था। भारतीय जनता को निराशा और उदासीनता ने घेर लिया था।

जागृति का शंखनाद फूँकने के लिए लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने यह उद्घोषणा की – 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।' महामना मदनमोहन मालवीय ने बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय की स्थापना की ।

श्री मोहनदास कर्मचन्द गान्धी (राष्ट्रपिता - महात्मा गाँधी) को महान् संत श्रीमद् राजचन्द्र की स्वीकृति से उनके पिताश्री कर्मचन्दजी ने इंग्लैंड में बार-एट-लॉ उपाधि हेतु भेजा । गाँधीजी ने महान् संत श्रीमद् राजचन्द्र की तीन प्रतिज्ञाएँ पालन कर भारत की गौरवशालिनी संस्कृति को उजागर किया। ये तीन प्रतिज्ञाएँ थीं — 1. मांसाहार त्याग 2. मदिरापान त्याग और 3. ब्रह्मचर्य का पालन। ये प्रतिज्ञाएँ भारतीय संस्कृति की रवि-रश्मियाँ हैं, जिनके प्रकाश से भारत जगद्गुरु के पद पर प्रतिष्ठित हैं, परन्तु आँग्ल शासन ने हमारी उज्ज्वल संस्कृति को नष्ट करने का भरसक प्रयास किया ।

ऐसे समय में अनेक दिव्य एवं तेजस्वी महापुरुषों ने जन्म लिया जिनमें श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, श्री आत्मारामजी (सुप्रसिद्ध जैनाचार्य श्रीमद् विजयानन्द सूरिजी) एवं विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी म. आदि हैं।

श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी ने चरित्र निर्माण और संस्कृति की पुनर्स्थापना के लिए जो कार्य किया, वह स्वर्णाक्षरों में अङ्कित है । एक ओर उन्होंने भारतीय साहित्य के गौरवशाली, चिन्तामणि रत्न के समान 'अभिधान राजेन्द्र कोष' को सात खण्डों में रचकर भारतीय वाङ्मय को विश्व में गौरवान्वित किया, तो दूसरी ओर उन्होंने सरल, तपोनिष्ठ, त्याग, करुणार्द्र और कोमल जीवन से सबको मैत्री-सूत्र में गुम्फित किया ।

विश्वपूज्य की उपाधि उनको जनता जनार्दन ने, उनके प्रति अगाध श्रद्धा-प्रीति और भक्ति से प्रदान की है, यद्यपि ये निर्मोही अनासक्त योगी थे। न तो किसी उपाधि-पदवी के आकाङ्क्षी थे और न अपनी यशोपताका फहराने के लिए लालायित थे ।

उनका जीवन अनन्त ज्योतिर्मय एवं करुणा रस का सुधा-सिन्धु था !

उन्होंने अपने जीवनकाल में महनीय 61 ग्रन्थों की रचना की है जिनमें काव्य, भक्ति और संस्कृति की रसवंती धाराएँ प्रवाहित हैं।

वस्तुतः उनका मूल्यांकन करना हमारे वश की बात नहीं, फिरभी हम प्रीतिवश यह लिखती हैं कि जिस समय भारत के मनीषी-साहित्यकार एवं कवि भारतीय संस्कृति और साहित्य को पुनर्जीवित करना चाहते थे, उस समय विश्वपूज्य भी भारत के गौरव को उद्‌भासित करने के लिए 63 वर्ष की आयु में सन् 1890 आश्विन शुक्ला 2 को कोष के प्रणयन में जुट गए। इस कोष के सप्त खण्डों को उन्होंने सन् 1903 चैत्र शुक्ला 13 को परिसम्पन्न किया। यह शुभ दिन भगवान् महावीर का जन्म कल्याणक दिवस है। शुभारम्भ नवरात्रि में किया और समापन प्रभु के जन्म-कल्याणक के दिन वसन्त ऋतु की मनमोहक सुगन्ध बिखेरते हुए किया।

यह उल्लेख करना समीचीन है कि उस युग में मैकाले ने अँग्रेजी भाषा और साहित्य को भारतीय विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में अनिवार्य कर दिया था और नई पीढ़ी अँग्रेजी भाषा तथा साहित्य को पढ़कर भारतीय साहित्य व संस्कृति को हेय समझने लगी थी, ऐसे पराभव युग में बालगंगाधर तिलक ने 'गीता रहस्य', जैनाचार्य श्रीमद् बुद्धिसागरजी ने 'कर्मयोग', श्रीमद् आत्मारामजी ने 'जैन तत्त्वादर्श' व 'अज्ञान तिमिर भास्कर',[1] महान् मनीषी अरविन्द घोष ने 'सावित्री' महाकाव्य लिखकर पश्चिम-जगत् को अभिभूत कर दिया।

उस युग में प्रज्ञा महर्षि जैनाचार्य विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी गुरुदेव ने '**अभिधान राजेन्द्र कोष**' की रचना की। उनके द्वारा निर्मित यह अनमोल ग्रन्थराज एक अमरकृति है। यह एक ऐसा विशाल कार्य था, जो एक व्यक्ति की सीमा से परे की बात थी, किन्तु यह दायित्व विश्वपूज्य ने अपने कंधों पर ओढ़ा।

भारतीय संस्कृति और साहित्य के पुनर्जागरण के युग में विश्वपूज्य ने महान् कोष को रचकर जगत् को ऐसा अमर ग्रन्थ दिया जो चिर नवीन है। यह 'एन साइक्लोपिडिया' समस्त भाषाओं की करुणार्द्र माता

---

1. अज्ञान तिमिर भास्कर को पढ़कर अंग्रेज विद्वान् हार्नेल इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने श्रीमद् आत्मारामजी को 'अज्ञान तिमिर भास्कर' के अलंकरण से विभूषित किया तथा उन्होंने अपने ग्रन्थ 'उपासक दशांग' के भाष्य को उन्हें समर्पित किया।

संस्कृत, जनमानस में गंग-धारा के समान बहनेवाली जनभाषा अर्धमागधी और जनता-जनार्दन को प्रिय लगनेवाली प्राकृत भाषा - इन तीनों भाषाओं के शब्दों की सुस्पष्ट, सरल और सहज व्याख्या उद्‌भासित करता है ।

इस महाकोष का वैशिष्ट्य यह है कि इसमें गीता, मनुस्मृति, ऋग्वेद, पद्मपुराण, महाभारत, उपनिषद, पातंजल योगदर्शन, चाणक्य नीति, पंचतंत्र, हितोपदेश आदि ग्रन्थों की सुबोध टीकाएँ और भाष्य उपलब्ध हैं । साथ ही आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'चरक संहिता' पर भी व्याख्याएँ हैं ।

'अभिधान राजेन्द्र कोष' की प्रशंसा भारतीय एवं पाश्चात्त्य विद्वान् करते नहीं थकते । इस ग्रन्थ रत्नमाला के सात खण्ड सात अनुपम दिव्य रत्न हैं, जो अपनी प्रभा से साहित्य-जगत् को प्रदीप्त कर रहे हैं ।

इस भारतीय राजर्षि की साहित्य एवं तप-साधना पुरातन ऋषि के समान थी । वे गुफाओं एवं कन्दराओं में रहकर ध्यानालीन रहते थे । उन्होंने स्वर्णगिरि, चामुण्डावन, मांगीतुंगी आदि गुफाओं के निर्जन स्थानों में तप एवं ध्यान-साधना की । ये स्थान वन्य पशुओं से भयावह थे, परन्तु इस ब्रह्मर्षि के जीवन से जो प्रेम और मैत्री की दुग्धधारा प्रवाहित होती थी, उससे हिंस्र पशु-पक्षी भी उनके पास शांत बैठते थे और भयमुक्त हो चले जाते थे ।

ऐसे महापुरुष के चरण कमलों में राजा-महाराजा, श्रीमन्त, राजपदाधिकारी नतमस्तक होते थे । वे अत्यन्त मधुर वाणी में उन्हें उपदेश देकर गर्व के शिखर से विनय-विनम्रता की भूमि पर उतार लेते थे और वे दीन-दुखियों, दरिद्रों, असहायों, अनाथों एवं निर्बलों के लिए साक्षात् भगवान् थे ।

उन्होंने सामाजिक कुरीतियों-कुपरम्पराओं, बुराइयों को समाप्त करने के लिए तथा धार्मिक रूढ़ियों, अन्धविश्वासों, मिथ्याधारणाओं और कुसंस्कारों को मिटाने के लिए ग्राम-ग्राम, नगर-नगर पैदल विहार कर विभिन्न प्रवचनों के माध्यम से उपदेशामृत की अजस्रधारा प्रवाहित

की । तृष्णातुर मनुष्यों को संतोषामृत पिलाया । कुसंपों के फुफकारते फणिधरों को शांत कर समाज को सुसंप का सुधा-पान कराया ।

विश्वपूज्य ने नारी-गरिमा के उत्थान के लिए भी कन्या-पाठशालाएँ, दहेज उन्मूलन, वृद्ध-विवाह निषेध आदि का आजीवन प्रचार-प्रसार किया । 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' के अनुरूप सन्देश दिया अपने प्रवचनों एवं साहित्य के माध्यम से ।

गुरुदेव ने पर्यावरण-रक्षण के लिए वृक्षों के संरक्षण पर जोर दिया । उन्होंने पशु-पक्षी के जीवन को अमूल्य मानते हुए उनके प्रति प्रेमभाव रखने के लिए उपदेश दिए । पर्वतों की हरियाली, वन-उपवनों की शोभा, शान्ति एवं अन्तर-सुख देनेवाली है । उनका रक्षण हमारे जीवन के लिए अत्यावश्यक है । इसप्रकार उन्होंने समस्त जीवराशि के संरक्षण के लिए उपदेश दिया ।

काव्य विभूषा : उनकी काव्य कला अनुपम है । उन्होंने शास्त्रीय राग-रागिनियों में अनेक सज्झाय व स्तवन गीत रचे हैं । उन्होंने शास्त्रीय रागों में ठुमरी, कल्याण, भैरवी, आशावरी आदि का अपने गीतों में सुरम्य प्रयोग किया है । लोकप्रिय रागिनियों में वनझारा, गरबा, ख्याल आदि प्रियंकर हैं । प्राचीन पूजा गीतों की लावनियों में 'सलूणा', 'रेखता', 'तीरथनी आशातना नवि करिए रे' आदि रागों का प्रयोग मनमोहक हैं । उन्होंने उर्दू की गजल का भी अपने गीतों में प्रयोग किया है ।

चैत्यवंदन - स्तुतियों में - दोहा, शिखरणी, स्रग्धरा, मालिनी, पद्धडी प्रमुख हैं । पद्धडी छन्द में रचित श्री महावीर जिन चैत्यवंदन की एक वानगी प्रस्तुत है —

"संसार सागर तार धीर, तुम विण कोण मुझ हरत पीर ।
मुझ चित्त चंचल तुं निवार, हर रोग सोग भयभीत वार ॥ [1]

एक निश्छल भक्त का दैन्य निवेदन मौन-मधुर है । साथ ही अपने परम तारक परमात्मा पर अखण्ड विश्वास और श्रद्धा-भक्ति को प्रकट करता है ।

---

1. जिन - भक्ति - मंजूषा भाग - 1

चौपड़ क्रीड़ा– सज्झाय में अलौकिक निरंजन शुद्धात्म चेतन रूप प्रियतम के साथ विश्वपूज्य की शुद्धात्मा रूपी प्रिया किस प्रकार चौपड़ खेलती है ? वे कहते हैं –

'रंग रसीला मारा, प्रेम पनोता मारा, सुखरा सनेही मारा साहिबा ।
पिउ मोरा चोपड़ इणविध खेल हो ॥
चार चोपड़ चारों गति, पिउ मोरा चोरासी जीवा जोन हो ।
कोठा चोरासिये फिरे, पिउ मोरा सारी पासा वसेण हो ॥'' [1]

यह चौपड़ का सुन्दर रूपक है और उसके द्वारा चतुर्गति रूप संसार में चौपड़ का खेल खेला जा रहा है। साधक की शुद्धात्म–प्रिया चेतन रूप प्रियतम को चौपड़ के खेल का रहस्योद्घाटन करते हुए कहती है कि चौपड़ चार पट्टी और 84 खाने की होती है। इसीतरह चतुर्गति रूप चौपड़ में भी 84 लक्षयोनि रूप 84 घर–उत्पत्ति–स्थान होते हैं। चतुर्गति चौपड़ के खेल को जीतकर आत्मा जब विजयी बन जाती है, तब वह मोक्ष रूपी घर में प्रवेश करती है।

अध्यात्मयोगी संत आनंदघन ने भी ऐसी ही चौपड़ खेली है –

''प्राणी मेरो, खेलै चतुरगति चोपर ।
नरद गंजफा कौन गिनत है, मानै न लेखे बुद्धिवर ॥
राग दोस मोह के पासे, आप वणाए हितधर ।
जैसा दाव परै पासे का, सारि चलावै खिलकर ॥'' [2]

विश्वपूज्य का काव्य अप्रयास हृदय–वीणा पर अनुगुंजित है । 'पिउ' [प्रियतम] शब्द कविता की अंगूठी में हीरककणी के समान मानो जड़ दिया।

विश्वपूज्य की आत्मरमणता उनके पदों में दृष्टिगत होती है। वे प्रकाण्ड विद्वान् – मनीषी होते हुए भी अध्यात्म योगीराज आनन्दघन की तरह अपनी मस्त फकीरी में रमते थे। उनका यह पद मनमोहक है –

'अवधू आतम ज्ञान में रहना,
किसी कु कुछ नहीं कहना ॥' [3]

---

1. जिन भक्ति मंजूषा भाग – 1
2. आनन्दघन ग्रन्थावली
3. जिन भक्ति मंजूषा भाग – 1

'मौनं सर्वार्थ साधनम्' की अभिव्यंजना इसमें मुखरित हुई है। उनके पदों में व्यक्ति की चेतना को झकझोर देने का सामर्थ्य है, क्योंकि वे उनकी सहज अनुभूति से निःसृत है। विश्वपूज्य का अंतरंग व्यक्तित्व उनकी काव्य-कृतियों में व्याप्त है। उनके पदों में कबीर-सा फक्कड़पन झलकता है। उनका यह पद द्रष्टव्य है –

"ग्रन्थ रहित निर्ग्रन्थ कहीजे, फकीर फिकर फकनारा।
ज्ञानवास में बसे संन्यासी, पंडित पाप निवारा रे
सद्‌गुरु ने बाण मारा, मिथ्या भरम विदारा रे॥"[1]

विश्वपूज्य का व्यक्तित्व वैराग्य और अध्यात्म के रंग में रंगा था। उनकी आध्यात्मिकता अनुभवजन्य थी। उनकी दृष्टि में आत्मज्ञान ही महत्त्वपूर्ण था। 'परभावों में घूमनेवाला आत्मानन्द की अनुभूति नहीं कर सकता। उनका मत था कि जो पर पदार्थों में रमता है वह सच्चा साधक नहीं है। उनका एक पद द्रष्टव्य है –

'आतम ज्ञान रमणता संगी, जाने सब मत जंगी।
पर के भाव लहे घट अंतर, देखे पक्ष दुरंगी॥
सोग संताप रोग सब नासे, अविनासी अविकारी।
तेरा मेरा कछु नहीं ताने, भंगे भवभय भारी॥
अलख अनोपम रूप निज निश्चय, ध्यान हिये बिच धरना।
दृष्टि राग तजी निज निश्चय, अनुभव ज्ञानकुं वरना॥"[2]

उनके पदों में प्रेम की धारा भी अबाधगति से बहती है। उन्होंने शांतिनाथ परमात्मा को प्रियतम का रूपक देकर प्रेम का रहस्योद्‌घाटन किया है। वे लिखते हैं –

'श्री शांतिजी पिउ मोरा, शांतिसुख सिरदार हो।
प्रेमे पाम्या प्रीतड़ी, पिउ मोरा प्रीतिनी रीति अपार हो॥
शांति सलूणो म्हारो, प्रेम नगीनो म्हारो, स्नेह समीनो म्हारो नाहलो।
पिउ पल एक प्रीति पमाड हो, प्रीत प्रभु तुम प्रेमनी,
पीउ मोरा मुज मन में नहिं माय हो॥"[3]

---

1. जिन भक्ति मंजूषा भाग – 1
2. जिन भक्ति मंजूषा भाग – 1
3. जिन भक्ति मंजूषा भाग – 1

यद्यपि उनकी दृष्टि में प्रेम का अर्थ साधारण-सी भावुक स्थिति न होकर आत्मानुभवजन्य परमात्म-प्रेम है, आत्मा-परमात्मा का विशुद्ध निरूपाधिक प्रेम है। इसप्रकार, विश्वपूज्य की कृतियों में जहाँ-जहाँ प्रेम-तत्त्व का उल्लेख हुआ है, वह नर-नारी का प्रेम न होकर आत्म-ब्रह्म-प्रेम की विशुद्धता है।

विश्वपूज्य में धर्म सद्भाव भी भरपूर था। वे निष्पक्ष, निस्पृही मानव-मानव के बीच अभेद भाव एवं प्राणि मात्र के प्रति प्रेम-पीयूष की वर्षा करते थे। उन्होंने अरिहन्त, अल्लाह-ईश्वर, रूद्र-शिव, ब्रह्मा-विष्णु को एक ही माना है। एक पद में तो उन्होंने सर्व धर्मों में प्रचलित परमात्मा के विविध नामों का एक साथ प्रयोग कर समन्वय-दृष्टि का अच्छा परिचय दिया है। उनकी सर्व धर्मों के प्रति समादरता का निम्नांकित पद मननीय है —

'ब्रह्म एक छे लक्षण लक्षित, द्रव्य अनंत निहारा।
सर्व उपाधि से वर्जित शिव ही, विष्णु ज्ञान विस्तारा रे॥
ईश्वर सकल उपाधि निवारी, सिद्ध अचल अविकारा।
शिव शक्ति जिनवाणी संभारी, रूद्र है करम संहारा रे॥
अल्लाह आतम आपहि देखो, राम आतम रमनारा।
कर्मजीत जिनराज प्रकासे, नयथी सकल विचारा रे॥'[1]

विश्वपूज्य के इस पद की तुलना संत आनंदघन के पद से की जा सकती है।[2]

यह सच है कि जिसे परमतत्त्व की अनुभूति हो जाती है, वह संकीर्णता के दायरे में आबद्ध नहीं रह सकता। उसके लिए राम-कृष्ण, शंकर-गिरीश, भूतेश्वर, गोविन्द, विष्णु, ऋषभदेव और महादेव

---

1. जिन भक्ति मंजूषा भाग - 1 पृ. 72
2. 'राम कहौ रहिमान कहौ, कोउ कान्ह कहौ महादेव री।
पारसनाथ कहौ कोउ ब्रह्मा, सकल ब्रह्म स्वयमेवरी॥
भाजन भेद कहावत नाना, एक मृत्तिका रूप री।
तैसे खण्ड कलपना रोपित, आप अखण्ड सरूप री॥
निज पद रमै राम सो कहिये, रहम करे रहमान री।
करषै करम कान्ह सो कहियै, महादेव निरवाण री॥
परसै रूप सो पारस कहियै, ब्रह्म चिन्है सो ब्रह्म री।
इहविध साध्यो आप आनन्दघन, चेतनमय निःकर्मरी॥' आनंदघन ग्रन्थावली, पद ६५

या ब्रह्म आदि में कोई अन्तर नहीं रह जाता है । उसका तो अपना एक धर्म होता है और वह है — आत्म-धर्म (शुद्धात्म-धर्म) । यही बात विश्वपूज्य पर पूर्णरूपेण चरितार्थ होती है । सामान्यतया जैन परम्परा में परम तत्त्व की उपासना तीर्थंकरों के रूप में की जाती रही है; किन्तु विश्वपूज्य ने परमतत्त्व की उपासना तीर्थंकरों की स्तुति के अतिरिक्त शंकर, शंभु, भूतेश्वर, महादेव, जगकर्ता, स्वयंभू, पुरूषोत्तम, अच्युत, अचल, ब्रह्म-विष्णु-गिरीश इत्यादि के रूप में भी की है । उन्होंने निर्भीक रूप से उद्घोषणा की है —

"शंकर शंभु भूतेश्वरो ललना, मही माहें हो वली किस्यो महादेव,
जिनवर ए जयो ललना ।
जगकर्ता जिनेश्वरो ललना, स्वयंभू हो सहु सुर करे सेव,
जिनवर ए जयो ललना ॥
वेद ध्वनि वनवासी ललना, चौमुखे हो चारे वेद सुचंग, जिन. ।
वाणी अनक्षरी दिलवसी ललना, ब्रह्माण्डे बीजो ब्रह्म विभंग, जि. ॥
पुरुषोत्तम परमातमा ललना, गोविन्द हो गिरुओ गुणवंत, जि. ।
अच्युत अचल छे ओपमा ललना, विष्णु हो कुण अवर कहंत, जि. ॥
नाभेय रिषभ जिणंदजी ललना, निश्चय थी हो देख्यो देव दमीश ।
एहिज सूरिशजेन्द्र जी ललना, तेहिज हो ब्रह्मा विष्णु गिरीश, जि. ॥"[1]

वास्तव में, विश्वपूज्य ने परमात्मा के लोक प्रसिद्ध नामों का निर्देश कर समन्वय-दृष्टि से परमात्म-स्वरूप को प्रकट किया है ।

इसप्रकार कहा जा सकता है कि विश्वपूज्य ने धर्मान्धता, संकीर्णता, असहिष्णुता एवं कूपमण्डूकता से मानव-समाज को ऊपर उठाकर एकता का अमृतपान कराया । इससे उनके समय की राजनैतिक एवं धार्मिक परिस्थिति का भी परिचय मिलता है ।

'अभिधान राजेन्द्र कोष' कथाओं का सुधासिन्धु है । कथाओं में जीवन को सुसंस्कृत, सभ्य एवं मानवीय गुण-सम्पदा से विभूषित करने का सरस शैली में अभिलेखन हुआ है । कथाएँ इक्षुरस के समान मधुर, सरस और सहज शैली में आलेखित हैं । शैली में प्रवाह हैं, प्राकृत और संस्कृत शब्दों को हीरक कणियों के समान तराश कर

1. जिन भक्ति मंजूषा भाग - 1 पृ. 72

कथाओं को सुगम बना दिया है ।

उपसंहार :

विश्वपूज्य अजर-अमर है । उनका जीवन 'तप्तं तप्तं पुनरपि पुनः काञ्चन कान्त वर्णम्' की उक्ति पर खरा उतरता है । जीवन में तप की कंचनता है, कवि-सी कोमलता है । विद्वत्ता के हिमाचल में से करुणा की गंग-धारा प्रवाहित है ।

उन्होंने जगत् को 'अभिधान राजेन्द्र कोष' रूपी कल्पतरू देकर इस धरती को स्वर्ग बना दिया है, क्योंकि इस कोष में ज्ञान-भक्ति और कर्मयोग का त्रिवेणी संगम हुआ है । यह लोक माङ्गल्य से भरपूर क्षीर-सागर है । उनके द्वारा निर्मित यह कोष आज भी आकाशी ध्रुवतारे की भाँति टिमटिमा रहा है और हमें सतत दिशा-निर्देश दे रहा है ।

विश्वपूज्य के लिए अनेक अलंकार ढूँढ़ने पर भी हमें केवल एक ही अलंकार मिलता है — वह है — अनन्वय अलंकार — अर्थात् विश्वपूज्य विश्वपूज्य ही है ।

उनका स्वर्गवास 21 दिसम्बर सन् 1906 में हुआ, परन्तु कौन कहता है कि विश्वपूज्य विलीन हो गये ? वे जन-जन के श्रद्धा केन्द्र सबके हृदय-मंदिर में विद्यमान हैं !

अभिधान राजेन्द्र कोष में,

सूक्ति-सुधारस

(द्वितीय खण्ड)

1 सूर्योदयास्त भ्रान्ति

णा इच्चो उदेति ण अत्थमेति ।

— **अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग-2 पृष्ठ 3]

— ***सूत्रकृतांग सूत्र 1/12/7***

वस्तुत: सूर्य न उदय होता है, न अस्त होता है। यह सब दृष्टिभ्रम है।

2 तप का फल

तपसो निर्जराफलं दृष्टम्

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 8]
एवं [भाग 6 पृ. 337]

— ***प्रशमरति 73***

तप का फल निर्जरा है।

3 विनय से अक्षयसुख

विणया णाणं, णाणाउ दंसणं दंसणाहिं चरणं तु ।
चरणाहिं तो मोक्खो मुक्खे सुक्खं अणाबाहं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 8]
एवं [भाग 6 पृ. 337]

— ***धर्मरत्न प्रकरण 1 पृ. 21***

विनय से ज्ञान, ज्ञान से दर्शन, दर्शन से चारित्र, चारित्र से मोक्ष होता है और मोक्ष से अव्याबाध सुख की प्राप्ति होती है।

4 कल्याणपात्र

तस्मात् कल्याणानां सर्वेषां भाजनं विनयः ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 8]
एवं [भाग 6 पृ. 337]

— ***प्रशमरति 74***

विनय सब कल्याणों का मूल हैं।

5 ज्ञान-फल

ज्ञानस्य फलं विरतिः ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 2 पृ. 8]
एवं [भाग 6 पृ. 337]
— *प्रशमरति 72*

ज्ञान का फल विरति है ।

6 सर्वकल्याण का मूलः विनय

विनयफलं शुश्रूषा, शुश्रूषा फलं श्रुतज्ञानं ।
ज्ञानस्य फलं विरति, विरति फलं चास्त्रव निरोधः ॥
संवरफलं तपोबलमथ, तपसो निर्जरा फलं दृष्टम् ।
तस्मात्क्रिया निवृत्तिः क्रिया निवृत्तेरयोगित्वम् ॥
योगनिरोधाद् भवसन्ततिक्षयः सन्ततिक्षयान्मोक्षः ।
तस्मात् कल्याणानां सर्वेषां भाजनं विनयः ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 2 पृ. 8]
एवं [भाग 6 पृ. 337]
— *प्रशमरति प्रकरण 72-73-74*

विनय का फल श्रवण, श्रवण (गुरु के समीप किया हुआ) का फल आगमज्ञान, आगमज्ञान का फल विरति (नियम), विरति का फल संवर (आस्रव निवृत्ति), संवर का फल तपः शक्ति, तप का फल निर्जरा, निर्जरा का फल क्रिया-निवृत्ति, क्रिया-निवृत्ति से योग-निरोध, योग निरोध होने से भव-परंपरा का क्षय होता है । परम्परा (जन्मादि) के क्षय से मोक्ष-प्राप्ति होती है । इसलिए सारे कल्याणों का भाजन विनय है ।

7 परिग्रहजन्य दोष

ण एत्थ तवो वा दमो वा णियमो वा दिस्सति ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 2 पृ. 10]
एवं [भाग 6 पृ. 730]
— *आचारांग 1/2/3/77*

परिग्रही पुरूष में न तप होता है, न दम (इन्द्रिय-निग्रह) होता है और न नियम ही होता है ।

8 जीवन-प्रिय

सव्वेसिं जीवितं पियं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 10]

— ***आचारांग 1/2/3/78***

सभी को जीवन प्यारा है।

9 जीवन-कामना

सव्वे पाणा पियाउया सुहसाता दुक्ख पडिकूला
अप्पियवधा पियजीविणो जीवितुकामा।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 10]

— ***आचारांग 1/2/3/78***

सभी प्राणियों को अपना जीवन प्यारा है। सभी सुख का आस्वाद चाहते हैं। दु:ख से घबराते हैं। मृत्यु सबको अप्रिय है और जीवन प्रिय। सब जीवित रहना चाहते हैं।

10 आत्म-चिन्तन

भवकोटिभिरसुलभ, मानुष्यं प्राप्य कः प्रमादो मे।
न च गतमायुर्भूयः, प्रेत्यत्यपि देवराजस्य

— **अभिधान राजेन्द्रकोष** [भाग 2 पृ. 11]
एवं [भाग 4 पृ. 2677]

— ***प्रशमरति प्रकरण - 64***

तिर्यञ्चगति आदि में अनन्तभव बीत गए, फिरभी अत्यन्त दुर्लभ मानवजन्म को पाने के बाद भी मेरा कैसा प्रमाद है ? इन्द्र का भी बीता आयुष्य पुन: लौटकर नहीं आता तब मनुष्य की बात ही कहाँ रही ?

11 एक दिन ऐसा आयेगा

जह तुब्भे तह अम्हे, तुम्हे विय होहिहा जहा अम्हे।
अप्पाहेति पडंतं पंडुय-पत्तं किसलयाणं।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 11]

— ***अनुयोगद्वार 121-492 (4)***

पीतवर्ण (पीला) पत्ता पृथ्वी पर गिरता हुआ अपने साथी हरे पत्तों से कहता है — "मेरे साथी ! आज जैसे तुम हो, एक दिन हम भी ऐसे ही थे और आज जैसे हम हैं, एकदिन तुम्हें भी ऐसा ही होना होगा।"

12 पल-पल-अप्रमाद

समयं गोयम ! मा पमायए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 11]

— *उत्तराध्ययन 10/34*

एक क्षण के लिए भी प्रमाद मत करो ।

13 क्षणभङ्गुर जीवन

कुसग्गे जह ओसबिंदुए, थोवं चिट्ठइ लंबमाणाए ।
एवं मणुयाणं जीवियं, समयं गोयम मा पमायए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 11]
एवं [भाग-4 पृ. 2569]

— *उत्तराध्ययन 10/2*

जैसे कुशा (घास) की नोंक पर हिलती हुई ओस की बूँद बहुत थोड़े समय के लिए टिक पाती है ठीक ऐसा ही मनुष्य का जीवन भी क्षणभंगुर है । अतएव हे गौतम ! क्षणभर के लिए भी प्रमाद मत कर ।

14 सरलात्मा

सोही उज्जुय भूयस्स ।

— **अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग-2 पृ. 28]
एवं [भाग-3 पृ. 1053]

— *उत्तराध्ययन 3/12*

सरल आत्मा की विशुद्धि होती है ।

15 धर्म-निवास

धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ ।

— **अभिधान राजेन्द्रकोष** [भाग-2 पृ. 28]
एवं [भाग-3 पृ. 1053]

— *उत्तराध्ययन 3/12*

पवित्र हृदय में ही धर्म निवास करता है ।

16 मोक्ष-पथिक

से जहा वि अणगारे उज्जुकडे नियाग पडिवण्णे अमायं कुव्वमाणे वियाहिते ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 28]

— ***आचारांग 1/1/3/19***

जो सरलतादि गुणों से युक्त है, मुक्ति-पथ का राही है और जो माया का आचरण नहीं करता है, उसे ही अणगार कहा गया है ।

17 अटूट श्रद्धा

जाए सद्धाए णिक्खंतो तमेव अणुपालिया विजहित्ता विसोत्तियं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 28]

— ***आचारांग 1/1/3/20***

जिस श्रद्धा के साथ निष्क्रमण किया है, उसी श्रद्धा के साथ विस्रोतसिका (शंका) छोड़कर उसका अनुपालन करना चाहिए ।

18 कौन वीर ?

पणया वीरा महावीहिं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 29]

— ***आचारांग 1/1/3/21***

वीरपुरूष महापथ के प्रति समर्पित होते हैं ।

19 निर्भय साधक

लोगं च आणाए अभिसमेच्चा अकुतोभयं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 29]
एवं [भाग-7 पृ. 893]

— ***आचारांग 1/3/4/129 एवं 1/1/3/21***

जो साधक अतिशय ज्ञानी पुरूषों की आज्ञा से कषाय रूप लोक को जानकर विषयों का त्याग कर देता है, वह पूर्ण अभय (भयमुक्त) हो जाता है ।

20 हिंसा अहितकारिणी

तं से अहियाए तं से अबोहियाए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 30]
एवं भाग-4 पृ. 2346

— *आचारांग 1/1/2/13*

यह जीवहिंसा अहित करनेवाली है और मिथ्यात्व का कारण है ।

21 आरम्भ

एस खलु गंथे एस खलु मोहे
एस खलु मारे एस खलु णरए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 30]
एवं [भाग-4 पृ. 234] एवं
[भाग-6 पृ. 1062]

— *आचारांग 1/1/2/14*

यह आरम्भ (हिंसा) ही वस्तुत: ग्रन्थ = बन्धन है, यही मोह है, यही मार = मृत्यु है और यही नरक है ।

22 मौतः एक झपाटा

सेणे जह वट्टयं हरे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 32]

— *सूत्रकृतांग 1/2/1/2*

जैसे बाज पक्षी तीतर को एक ही झपाटे में मार डालता है ठीक वैसे ही आयु क्षीण होने पर मृत्यु भी मनुष्य के प्राण हर लेती है ।

23 मूढ़ मानव

अट्टेसु मूढे अजरामरव्व ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 32]

— *सूत्रकृतांग 1/10/18*

मूढ़ स्वयं को अजर-अमर के समान मानता हुआ आर्तध्यान सम्बन्धी कार्यों में फँसा रहता है ।

24 मृत्यु कला

जं किंचुवक्कम जाणे आउखेमस्समप्पणो ।
तस्सेव अन्तरद्धाए, खिप्पं सिक्खिज्ज पंडिए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 33]
एवं भाग-6 पृ. 131
— *आचारांग 1/8/8*

संलेखनाकालीन जीवन में स्थित पंडित साधक को यदि अपने आयु-क्षेम में किञ्चित् भी विघ्न मालूम पड़े तो उसके अन्तरकाल में शीघ्र ही भक्त-परिज्ञादि का अनुष्ठान कर लेना चाहिए ।

25 अतीत अनागत निश्चिन्त

अवरेण पुव्वं ण सरंति एगे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 59]
— *आचारांग 1/3/3/124/11*

कुछ साधक अतीत के भोगों की स्मृति और भविष्य के भोगों की स्मृति नहीं करते ।

26 निष्काम ज्ञानी

का अरइ ! के आणंदे एत्थंपि उग्गहे चरे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 60]
एवं [भाग-7 पृ. 60]
— *आचारांग 1/3/3/124*

ज्ञानी के लिए क्या अरति है, क्या आनन्द है ? वह अरति और आनन्द के इस विकल्प को ग्रहण किए बिना विचरण करें ।

27 एक जाना, सब जाना

एको भावः सर्वथा येन दृष्टः सर्वे भावाः सर्वथा तेन दृष्टाः।
सर्वे भावाः सर्वथा येन दृष्टाः, एको भावः सर्वथा तेन दृष्टः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग-2 पृ. 79]
— *स्याद्वादमंजरी पृ. 5*

जिसने एक भाव को सर्वथा समझ लिया उसीने सब भावों को सर्वथा समझा है तथा जिसने सर्व भावों को सर्वथा समझ लिया उसीने एक भाव को सर्वथा समझा है ।

28 आगम-चक्षु

आगम चक्खू साहू ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 90]

— ***प्रवचनसार 3/34***

साधु-सन्त के पास आगम (तत्त्वज्ञान) रूपी आँखें होती हैं ।

29 गुणः मूल्यांकन

अहवा कायमणिस्सउ, सुमहल्लस्स वि उ कागणी मोल्लं ।
वइरस्स उ अप्पस्स वि, मोल्लं होति सयसहस्सं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 93]

— ***व्यवहारभाष्य 10/216***

कॉँच के बड़े मनके का भी केवल एक काकिनी का मूल्य होता है और हीरे की छोटी-सी कणी भी लाखों के मूल्य की होती है । (रूपये का अस्सीवाँ भाग काकिणी होती हैं ।)

30 आज्ञा-धर्म

आणाए मामगं धम्मं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 131]

— ***आचारांग 1/6/2/185***

आज्ञा ही मेरा धर्म है ।

31 मोक्ष-मार्ग-नाशक

भट्ठायारो सूरी ! भट्ठायाराणुवेक्खओ सूरी ।
उम्मग्गट्ठिओ सूरी तिणिविमग्गं पणासंति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 135]
एवं 335/336

— ***गच्छाचारपयन्ना-28***

भ्रष्टचारी आचार्य, भ्रष्टचारी साधुओं की उपेक्षा करनेवाला आचार्य और उन्मार्ग स्थित आचार्य — ये तीनों ही ज्ञानादि मोक्ष-मार्ग का नाश करनेवाले हैं ।

32 एकान्त-अनेकान्त

एगंतो मिच्छत्तं, जिणाण आणा य होइ णेगंतो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 135]

— ***तीत्थोगाली पयन्ना-1213***

वस्तुत: एकान्त में मिथ्यात्व है । जिनेश्वरों की आज्ञा अनेकान्त की है ।

33 आचार्य: तीर्थंकर

तित्थयर समो सूरी ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 135]
एवं [भाग 4 पृ. 2314]

— ***महानिशीथसूत्र 5/101***

— ***गच्छाचार पयन्ना टीका-27***

आचार्य (गुरु भगवन्त) तीर्थंकर के समान होते हैं ।

34 कापुरूष

आणं अइक्कमंते ते कापुरिसे न सप्पुरिसे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग-2 पृ. 135-335]

— ***महानिशीथ 5/101***

जो तीर्थंकरों की आज्ञा का उल्लंघन करता है, वह कापुरूष है; सत्पुरुष नहीं ।

35 आज्ञा

आणाए च्चिय चरणं, तब्भंगे किं न भग्गं तु ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग-2 पृ. 137-138]

— ***बृहत्कल्पवृत्ति सभाष्य 1/3***

आज्ञा-पालन में चारित्र है, आज्ञा के भंग में क्या भग्न नहीं होता ? अर्थात् सब कुछ भंग हो जाता है ।

36 आज्ञोल्लंघन

आणा नो खंडेज्जा, आणाभंगे कुओ सुहं ?

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग-2 पृ. 138-141]

— ***महानिशीथ 5/120***

आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। आज्ञा का उल्लंघन करने पर सुख कैसे ?

37 आज्ञा खण्डित धर्म

आणा खंडणकरीय, सव्वंपि निरत्थयं तस्स ।
आणा रहिओ धम्मो, पलाल पुलुव्व पडिहाइ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 141]

— *हीरप्रश्न-प्रकाश-1*

जो आज्ञा का खंडन करता है उसका सबकुछ निरर्थक हो जाता है। आज्ञारहित धर्म बिना कणवाले घास के पुले जैसा है।

38 समय मूल्यवान्

विहडइ विद्धंसइ ते सरीरयं,
समयं गोयम मा पमायए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 174]

— *उत्तराध्ययन 10/27*

यह तुम्हारा शरीर टूट जानेवाला है, विध्वंस हो जानेवाला है, इसलिए क्षणभर का भी प्रमाद मत करो।

39 साधनाशील

आतंकदंसी अहियंति णच्चा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग-2 पृ. 174]
एवं [भाग 6 पृ. 1061]

— *आचारांग 1/1/7/56*

साधनाशील पुरूष हिंसा में आतंक देखता है, उसे अहितकर मानता है। इसलिए हिंसा से निवृत्त होने में समर्थ होता है।

40 आतङ्कदर्शी

आयंकदंसी न करेति पावं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग-2 पृ. 175]
एवं [भाग 5 पृ. 1316]

— *आचारांग - 1/3/2/115*

जो संसार के दु:खों का ठीक तरह से दर्शन कर लेता है, वह कभी पाप-कर्म नहीं करता है।

41 मनुष्यायु-अल्प भी

अप्पं च खलु आउं इहमेगेसिं माणवाणं।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 176]

— *आचारांग - 1/2/1/64*

निश्चय ही इस संसार में कुछ मनुष्यों की आयु अल्प होती है।

42 ढलती आयु में मूढ़

अभिकंतं च खलु वयं संपेहाए ततो से एगया मूढभावं जणयंति।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 176]

— *आचारांग - 1/2/1/64*

अवस्था को तेजी से जाते हुए देखकर व्यक्ति चिन्ताग्रस्त हो जाता है और फिर एकदा (जीवन के उत्तरार्द्ध में) वह मूढ़ता को प्राप्त हो जाता है।

43 आत्मगुप्त जितेन्द्रिय

कडं च कज्जमाणं च आगमेस्सं च पावगं।
सव्वं तं णाणु जाणंति, आयगुत्ता जिइंदिया॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 176]

— *सूत्रकृतांग - 1/8/21*

आत्म-गुप्त (रक्षक) जितेन्द्रिय साधक किसी के द्वारा अतीत में किए हुए, भविष्य में किए जानेवाले और वर्तमान में किए जाते हुए पाप की सर्वथा मन-वचन और काया से अनुमोदना नहीं करते।

44 असत्-असत्

नो य उप्पज्जए असं।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 176]

— *सूत्रकृतांग - 1/1/1/16*

असत् कभी सत् नहीं होता ।

45 शरणदाता नहीं

णालं ते तव ताणाए वा सरणाए वा तुमं पि तेसिं णालं ताणाए वा सरणाए वा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग-2 पृ. 177 178-179]

— ***आचारांग - 1/2/1/64***

हे आत्मन् ! वे तेरे स्वजन तेरी रक्षा करने में या शरण देने में समर्थ नहीं है और तुम भी उन्हें त्राण या शरण देने में समर्थ नहीं हो ।

46 नारी-रक्षा

पिता रक्षति कौमारे - भर्ता रक्षति यौवने ।
पुत्राश्च स्थाविरे भावे, न स्त्री स्वातन्त्रमर्हति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 177]

— ***हितोपदेश - 1/21 एवं महाभारत आदिपर्व 73/5***

कुमारावस्था में पिता, जवानी में पति और बुढापे में पुत्र रक्षा करता है । स्त्री कभी स्वतन्त्रता के योग्य नहीं है ।

47 धिक् धिक् जरा

गात्रं संकुचितं गतिर्विगलिता, दन्ताश्च नाशं गता ।
दृष्टि र्भश्यति रूपमेव हसते वक्त्रं च लालायते ॥
वाक्यं नैव करोति बान्धवजनः पत्नी न शुश्रूयते ।
धिक्कष्टं जरयाऽभिभूतं पुरूषं पुत्रोऽप्यवज्ञायते ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 177]

— ***पंचतंत्र - 2/194***

शरीर सिकुड़ गया, चाल बिगड़ गई, दाँत गिर गए, दृष्टि घूमने लगी, रूप-सौन्दर्य नष्ट हो गया, मुख से लारें टपकने लगी, बन्धुजन उसकी बात नहीं सुनते, पत्नी सेवा नहीं करती और पुत्र भी अपमान करते हैं ऐसे जरा से अभिभूत पुरूष के कष्ट को धिक्कार है ।

48 तुर्यावस्था में क्या करेगा ?

प्रथमे वयसि नाधीतं, द्वितीये नार्जितं धनम् ।
तृतीये न तपस्तपं, चतुर्थे किं करिष्यति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 177]
— ***आचारांगसूत्रसटीक*** - *1/2/1/63*

जिसने प्रथम अवस्था में अध्ययन नहीं किया । दूसरी अवस्था में धनोपार्जन नहीं किया । तृतीय उम्र में तपाचरण नहीं किया तो फिर चौथी अवस्था में वह क्या करेगा ?

49 जराभिशाप

से ण हासाए ण किड्डाएण रतीए ण विभूसाए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 177]
— ***आचारांग*** - *1/2/1/64*

वृद्धावस्था में मनुष्य न हँसी विनोद के योग्य रहता है, न खेलने के, न रति-सेवन के और न श्रृंगार के योग्य ही रहता है ।

50 धर्म

जं जं करेइ तं तं न सोहए जोव्वणे अतिक्कंते ।
पुरिसस्स महिलियाए, एक्कं धम्मं पमुत्तूणं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 178]
— ***आचारांग सूत्र सटीक*** - *1/2/1/64*

एकमात्र धर्म को छोड़कर पुरुष और महिलाओं के लिए जवानी बीत जाने पर जो जो किया जाता है, वह सुशोभित नहीं होता ।

51 पानी केरा बुल बुला

वओ अच्चेति जोव्वणं च ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 178]
— ***आचारांग*** - *1/2/1/65*

आयु बीत रही है, यौवन चला जा रहा है ।

52 द्रुतगामी

नइवेग समं चवलं च जीवियं, जोव्वणञ्च कुसुम समं ।
सोक्खं च जं अणिच्चं, तिण्णि वि तुरमाण भोज्जाइं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 178]
— *आचारांग सूत्र सटीक* - *1/2/1/65*

जीवन सरिता के प्रवाह के समान चपल, जवानी पुष्पवत् और जो सुख है, वह अनित्य है । ये तीनों अतितेजी से बीत जानेवाले हैं ।

53 उद्‌बोधन

अणभिक्कंतं च वयं संपेहाए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 179]
— *आचारांग* - *1/2/1/68*

हे प्रबुद्ध साधक ! जो बीत गया सो बीत गया । शेष रहे जीवन को ही ध्यान में रखकर प्राप्त अवसर को परख ।

54 समय पहचानो

खणं जाणाहि पंडिए !

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 179]
— *आचारांग* - *1/2/1/68*

हे आत्मज्ञ ! क्षण को अर्थात् समय के मूल्य को पहचानो ।

55 आत्मज्ञाता

अत्ताणं जो जाणति जोय लोगं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 180]
एवं [भाग-3 पृ. 559]
— *सूत्रकृतांग* - *1/12/20*

जो आत्मा को जानता है, वही लोक को जानता है ।

56 तबतक गुरूसेवा

गुरूत्वं स्वस्य नोदेति, शिक्षा सात्म्येन यावता ।
आत्म-तत्त्व प्रकाशेन, तावत्सेव्यो गुरूत्तमः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ.180]

— **एवं** [भाग-3 पृ. 1171]

— ***ज्ञानसार* - 8/5**

आत्म-तत्त्व के प्रकाश से जबतक अपनी भूल को पहचान कर स्वयं में गुरूत्व न आ जाए तब तक उत्तम गुरु की सेवा करनी चाहिए।

57 अनात्म-प्रशंसा

गुणै र्यदि न पूर्णोऽसि कृतमात्म प्रशंसया ।
गुणैरेवासि पूर्णश्चेत् कृतमात्मप्रशंसया ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 181]

— ***ज्ञानसार 18/1***

यदि तू गुणों से पूर्ण नहीं है तो अपनी प्रशंसा व्यर्थ है और यदि तू गुणों से पूर्ण है तब भी अपनी प्रशंसा व्यर्थ है।

58 सर्वमुक्त

सव्वत्थेसु विमुत्तो, साहू सव्वत्थ होइ अप्पवसो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 185]

— ***मूलाराधना* - 335 *एवं***
***गच्छाचारप्रकीर्णक* - 68**

जो साधु सभी वस्तुओं की आसक्ति से मुक्त होता है, वही जितेन्द्रिय तथा आत्मवशी होता है।

59 आत्मदृष्टि -

आततो बहिया पास

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 186]

— ***आचारांग* - 1/3/3/122**

अपने समान ही बाहर में दूसरों को भी देख।

60 त्रिविध आत्मा

बाह्यात्मा चान्तरात्मा च परमात्मेति त्रयः ।
कायाधिष्ठायक ध्येयाः, प्रसिद्धा योगवाङ्मये ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 188]

— ***सिद्धसेन द्वात्रिंशत् - द्वात्रिंशिका-20/17***

योगवाङ्मय योग-ग्रन्थ में प्रसिद्ध आत्मा के तीन प्रकार हैं — बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा ।

61 चेतना-शक्ति

चित्तं तिकाल विसयं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 193]

— ***दशवैकालिक निर्युक्ति भाष्य-19***

आत्मा की चेतना शक्ति त्रिकाल है ।

62 अमूर्त गुण

अणिंदिय गुणं जीवं, दुज्जेयं मंस चक्खुणा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 195]

— ***दशवैकालिक निर्युक्ति भाष्य - 34***

आत्मा के गुण अमूर्त है, अत: उनको चर्म चक्षुओं से देख पाना कठिन है ।

63 आत्म-अपलाप

जे लोगं अब्भाइक्खति से अत्ताणं अब्भाइक्खति ।
जे अत्ताणं अब्भाइक्खति, से लोगं अब्भाइक्खति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 195] **एवं** [भाग-4 पृ. 344]

— ***आचारांग - 1/1/3/22***

जो लोक (अन्य जीवसमूह) का अपलाप करता है, वह स्वयं अपनी आत्मा का भी अपलाप करता है । जो अपनी आत्मा का अपलाप करता है वह लोक (अन्य जीवसमूह) का भी अपलाप करता है ।

64 औपपातिक-आत्मा

अत्थि मे आया उववाइए
से आयावादी, लोगावादी, कम्मावादी, किरियावादी ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 205]

— ***आचारांग - 1/1/1/1-3***

यह मेरी आत्मा औपपातिक है। कर्मानुसार पुनर्जन्म ग्रहण करती है। आत्मा के पुनर्जन्म सम्बन्धी सिद्धान्त को स्वीकार करनेवाला ही वस्तुत: आत्मवादी, लोकवादी, कर्मवादी और क्रियावादी है।

65 वीरभोग्या

वीरभोग्या वसुन्धरा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 207]

— ***आचारांग सटीक 1/1/1***

यह वसुन्धरा (धरती) वीरों के द्वारा भोग्य है।

66 नित्यानित्यवाद

सुहदुक्ख संपओगो, न विज्जइ निच्चवाय पक्खंमि ।
एगंतच्छेअंमि अ, सुहदुक्ख विगप्पणमजुत्तं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 210]

— ***दशवैकालिक निर्युक्ति 1/60***

एकान्त नित्यवाद के अनुसार सुख-दु:ख का संयोग संगत नहीं बैठता और एकान्त अनित्यवाद के अनुसार भी सुख-दु:ख की बात उपयुक्त नहीं होती। अत: नित्यानित्यवाद ही इसका सही समाधान कर सकता है।

67 नित्यात्मा

णिच्चो अविणासी सासओ जीवो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 210]

— ***दशवैकालिक निर्युक्ति भाष्य 42***

जीव (आत्मा) नित्य है; अविनाशी और शाश्वत है।

68 एकात्मा

एगे आया ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 219]

— ***स्थानांग - 1/1/2 एवं समवायांग 1/3***

स्वरूपदृष्टि से सब आत्माएँ एक (समान) हैं ।

69 समता का पारगामी

एस आतावादी समियाए परियाए वियाहिते ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 223]

— ***आचारांग - 1/5/5/171***

वह आत्मवादी सत्य या समता का पारगामी होता है ।

70 आत्म-प्रतीति

जेण विजाणति से आता तं पडुच्च पडिसंखाए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 223]

— ***आचारांग - 1/5/5/171***

जिससे जाना जाता है, वह आत्मा है । जानने की इस शक्ति से ही आत्मा की प्रतीति अर्थात् पहचान होती है ।

71 ज्ञानात्मा

णाणे पुण नियमं आया ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 223]

— ***भगवती - 12/10/10***

नियम से ज्ञान ही आत्मा है ।

72 आत्म-विज्ञाता

जे आता से विण्णाता, जे विण्णाता से आता ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 223]

— ***आचारांग - 1/5/5/171***

जो आत्मा है, वह विज्ञाता है । जो विज्ञाता है, वह आत्मा है ।

73 अरक्षितात्मा

अरक्खिओ जाइ पहं उवेई ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 231]

— ***दशवैकालिक चूलिका - 2/16***

अरक्षित आत्मा जन्म-मरण के पथ की पथिक बनती है ।

74 सुरक्षितात्मा

सुरक्खिओ सव्व दुहाण मुच्चइ ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 2 पृ. 231]

— *दशवैकालिक चूलिका - 2/16*

सुरक्षित आत्मा सब दुःखों से मुक्त हो जाती है ।

75 पाप से बचाव

अप्पा खलु सययं रक्खियव्वो ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 2 पृ. 231]

— *दशवैकालिक चूलिका - 2/16*

अपनी आत्मा को सतत पापों से बचाए रखना चाहिए ।

76 निश्चय-रत्नत्रय

आया हु महं नाणे, आया मे दंसणे चरिते य ।
आया पच्चक्खाणे, आया मे संजमे जोगे ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 2 पृ. 231]

— *आतुरप्रत्याख्यान - 25*

आत्मा ही मेरा ज्ञान है । आत्मा ही दर्शन और चारित्र है । आत्मा ही प्रत्याख्यान है और आत्मा ही संयम और योग है अर्थात् ये सब आत्म रूप ही है ।

77 विवेक दुर्लभ

देहात्माद्यविवेकोऽयं, सर्वदा सुलभो भवे ।
भवकोट्यादि तद्भेद, - विवेकस्त्वति दुर्लभः ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 2 पृ. 232]

— *ज्ञानसार 15/2*

देह ही आत्मा है यह अविवेक तो सुलभ है, परन्तु करोड़ों जन्मों के बावजूद भी भेदज्ञान रूपी विवेक प्राप्त होना अति दुर्लभ है ।

78 समता कुण्ड स्नान

य स्नात्वा समता कुण्डे, हित्वा कश्मलजं मलम् ।
पुन र्न याति मालिन्यं, सोऽन्तरात्मा परः शुचि ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 232]

— ***ज्ञानसार - 14/5***

जो आत्मा समता कुण्ड में स्नान कर पाप-मल को धोकर साफ करती है, वह पुन: मलिन नहीं बनती । ऐसी अन्तरात्मा विश्व में अत्यन्त पवित्र है ।

79 अविवेकी

इष्टकाद्यपि हि स्वर्णं, पीतोन्मत्तो यथेक्षते ।
आत्माऽभेद भ्रमस्तद्वद् देहादावविवेकिनः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 232]

— ***ज्ञानसार - 15/5***

जैसे धतूरे का पानकर उन्मत्त जीव ईंट आदि को भी स्वर्ण मानता है वैसे ही अविवेकी पुरुष देह और आत्मा को एक मानता है ।

80 लक्ष्मी-आयु-देह-नश्वर

तरङ्ग तरलां लक्ष्मी-मायुर्वायुवदस्थिरम् ।
अदभ्रधीरनु ध्यायेदभ्रवद् भङ्गुरं वपुः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 232]

— ***ज्ञानसार - 14/3***

बुद्धिमान् मनुष्य लक्ष्मी को समुद्र-तरंग की तरह चपल, आयुष्य को वायु के झोंके की तरह अस्थिर और शरीर को बादल की तरह क्षणध्वंसी मानता है ।

81 अप्पा सो परमप्पा

पश्यन्ति परमात्मान-मात्मन्येव हि योगिनः ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 232]

— ***ज्ञानसार 14/8***

योगी पुरूष अपनी आत्मा में ही परमात्मा के दर्शन पाता है ।

82 आत्मद्रष्टा से मोह-चोर दूर

य पश्येन्नित्यमात्मानमनित्यं परसङ्गमम् ।
छलं लब्धुं न शक्नोति, तस्य मोहमलिम्लुचः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 232]

— ***ज्ञानसार 14/2***

जो सदा आत्मा को नित्य, अविनाशी देखता है और पुद्गल-सम्बन्ध को अनित्य, अस्थिर देखता है उसके छल-छिद्र देख पाने में मोहरूपी चोर कभी समर्थ नहीं होता ।

83 राजहंस-मुनि

कर्म जीवश्च सश्लिष्टं सर्वदा क्षीर नीरवत् ।
विभिन्नीकुरूते योऽसौ मुनिहंसो विवेकवान् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 232]

— ***ज्ञानसार 15/1***

दूध और पानी की तरह ओतप्रोत बने जीव और कर्म को जो मुनिरूपी राजहंस सदैव अलग करता है, वही मुनिहंस विवेकी होता है ।

84 दारूण-भ्रान्ति

शुचीन्यप्यशुचीकर्तुं समर्थेऽशुचिसंभवे ।
देहे जलादिना शौचं भ्रमो मूढस्य दारूणः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 232]

— ***ज्ञानसार 14/4***

पवित्र पदार्थ को भी अपवित्र करने में समर्थ और अपवित्र पदार्थ से उत्पन्न हुए इस शरीर को पानी वगैरह से पवित्र करने की कल्पना दारूण भ्रम है ।

85 लड़े सिपाही नाम सरदार का

यथा योधैः कृतं युद्धं स्वामिन्येवोपचर्यते ।
शुद्धात्मन्यविवेकेन, कर्मस्कन्धोर्जितं तथा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 232]

— *ज्ञानसार - 15/4*

जैसे योद्धाओं द्वारा खेले गए युद्ध का श्रेय राजा को मिलता है वैसे ही अविवेक के कारण कर्मस्कन्ध का पुण्य-पापरूप फल शुद्ध आत्मा में आरोपित है ।

86 सदा अकेला

एगो वच्चइ जीवो, एगो चेवु व वज्जई ।
एगस्स होइ मरणं, एगो सिज्झइ नीरओ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 232]

— *आतुर प्रत्याख्यान - 26*

जीव अकेला आता है और अकेला ही जाता है । अकेला ही मरता है और अकेला ही सिद्ध होता है ।

87 शाश्वत तत्त्व

एगो मे सासओ अप्पा, नाणदंसणसंजुओ ।
सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे संजोग लक्खणा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग-2 पृ. 232]
एवं [भाग 6 पृ. 457]

— *आतुर प्रत्याख्यान - 27*

ज्ञान-दर्शन स्वरूप मेरी आत्मा ही शाश्वततत्त्व है । इससे भिन्न जितने भी (राग-द्वेष-कर्म-शरीरादि) भाव हैं वे सब संयोगजन्य बाह्यभाव हैं । अत: वे मेरे नहीं हैं ।

88 संयमास्त्र

संयमाऽस्त्र विवेकेन शाणेनोत्तेजितं मुनेः ।
धृति धारोल्बणं कर्म, शत्रुच्छेदक्षमं भवेत् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 233]

— *ज्ञानसार - 15/8*

जिसने संयमरूपी शस्त्र को विवेक रूप शाण पर चढ़ाकर धैर्य रूप तीक्ष्णधार की हो, वह मुनि कर्मरूपी शत्रु का छेदन-भेदन करने में समर्थ होता है ।

89 युक्ति युक्त ग्राह्य

पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु ।
युक्तिमद् वचनं यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 278]
— *लोकतत्त्वनिर्णय - 38*

न तो मुझे महावीर का पक्षपात है और न कपिल आदि मतों से द्वेष है । जिसका वचन युक्ति सङ्गत है उसीके वचन को स्वीकार करना चाहिए ।

90 मति-श्रुत अन्योन्याश्रित

जत्थ आभिणिबोहियणाणं, तत्थ सुयनाणं ।
जत्थ सुअनाणं, तत्थाऽऽभिणिबोहियं णाणं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 279]
— *नंदीसूत्र सवृत्ति 24*

जहाँ पर आभिनिबोधिक (मतिज्ञान) होता है वहाँ श्रुतज्ञान अवश्य होता है, यह नियम नहीं है; किन्तु जहाँ श्रुतज्ञान होता है उससे पहले मतिज्ञान अवश्य होता है ।

91 निःसार संयमी

कुल गाम नगर रज्जं, पयहियं जो तेसु कुणइ हु ममत्तं ।
सो नवरि लिंगधारी, संजम जोएण निस्सारो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 334]
— *गच्छाचार पयन्ना - 1/24*

जो कुल = घर, गाँव, नगर और राज्यादि शाहीठाठ छोड़कर पुन: उसके प्रति ममत्त्व भाव या आसक्ति रखते हैं; तो वे आचार्य संयम भाव से शून्य हैं, रिक्त हैं, मात्र वेशधारी ही आचार्य हैं ।

92 आचार्य भ.-उत्तरदायित्त्व

विहिणा जो उ चोएइ, सुत्तं अत्थं च गाहई ।
सो धन्नो सो अ पुण्णो अ, स बंधू मुक्खदायगो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 334]

— *गच्छाचारपयन्ना - 1/25*

जो आचार्य शिष्य समूह को विधिपूर्वक सारणा, वारणा, चोयणा आदि में प्रेरित करते हैं तथा सूत्र और अर्थ का अध्यापन करवाते हैं; वे ही आचार्य धन्य, पवित्र, बन्धु के समान और मुक्तिदायक हैं ।

93 पुरः स्पर्शी पारदर्शी

स एव भव्वसत्ताणं, चक्खुभूए वियाहिए ।
दंसेइ जो जिणुद्दिट्ठं, अणुट्ठाणं जहाट्ठियं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 335]

— *गच्छाचार पयन्ना - 1/26*

जो आचार्य भगवन्त तीर्थंकर परमात्मा द्वारा प्रकाशित सम्यग् दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूपी रत्नत्रयी यथास्थित दर्शाते हैं, वे ही आचार्य भव्य प्राणिओं के लिए चक्षु के समान कहे गए हैं ।

94 आचार्य गोपाल तुल्य

आचार्यस्यैव तत् जाड्यं, यच्छिष्यो नावबुध्यते ।
गावो गोपालकेनैव कुतीर्थे नावतारिताः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 337]

— *आवश्यकमलयगिरि - 1/1*

यदि शिष्य को ज्ञान नहीं होता तो वह आचार्य की ही जड़ता है, क्योंकि गायों को कुघाट में उतारने वाला वस्तुतः गोपाल ही है ।

95 शत्रु-गुरु

संगहोवग्गहं विहिणा न करेइ य जो गणी ।
समणं समणिं तु दिक्खित्ता समायारि न गाहए ॥
बालाणं जो उ सेसाणं, जीहाए उवलिंपए ।
तं सम्ममग्गं गाहेइ, सो सूरी जाण वेरिओ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 337]

— *गच्छाचार पयन्ना - 15/16*

जो आचार्य - गुरु आगमोक्त विधिपूर्वक शिष्यों के लिए संग्रह (वस्त्र-पात्र, क्षेत्र आदि का) तथा उपग्रह (ज्ञान-दान आदि का) नहीं करता, श्रमण-श्रमणी को दीक्षा देकर साधु-समाचारी नहीं सिखाता एवं बाल शिष्यों को सन्मार्ग में प्रेरित न करके केवल गाय-बछड़े की तरह उन्हें जीभ से चूमता या चाटता है, वह आचार्य (गुरु) शिष्यों का शत्रु है।

96 गुरु-वैरी

जीहाए विलिहंतो, न भद्दओ सारणा जहिं नत्थि ।
दण्डेण वि ताडंतो, स भद्दओ सारणा जत्थ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 337]
— ***गच्छाचार पयन्ना - १/१७***

जो आचार्य शिष्यों को स्नेह-वात्सल्यपूर्वक चुम्बन करते हैं, परन्तु हितमार्ग में प्रवृत्ति करानेवाली तथा स्वकर्तव्य का बोध करानेवाली सारणा, वारणा, चोयणा आदि नहीं करते हैं, वे आचार्य हितकारी-कल्याणकारी नहीं हैं, किन्तु जो सद्गुरु सारणा-वारणादि के साथ कभी दण्डादि से ताड़ना-तर्जना करते हैं, तो भी वे हितकारी हैं, श्रेष्ठ हैं।

97 ज्ञान ज्योतिष्मान्

जह दीवो दीवसयं पइप्पए दीप्पइ य ।
सो दीव समा आयरिआ, अप्पं च परं च दीवंति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 337]
— ***उत्तराध्ययन निर्युक्ति - ८***

जिसप्रकार दीपक स्वयं प्रकाशमान होता हुआ अपनी दीप्ति से अन्य सैकड़ों दीपकों को जला देता है, उसीप्रकार सद्गुरु आचार्य स्वयं ज्ञान-ज्योति से प्रकाशित होते हैं और दूसरों को भी प्रकाशमान् करते हैं।

98 गच्छ-धुरि

मेढी आलंबणं खंभं दिट्ठि जाण सु उत्तमं ।
सूरी जं होइ गच्छस्स, तम्हा तं तु परिक्खए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 348]

— *गच्छाचार पयन्ना* - *8*

आचार्य भ. गच्छ के प्रमुख परिवाहक (स्तम्भरूप परिचालक) हैं और निश्छिद्रवाहन हैं। अत: चहुँमुखी दृष्टि से आचार्यश्री का निरीक्षण करते रहो, साधते रहो, समझते रहो और मानते रहो व सूझबूझ से देखते रहो।

99 जिणवाणी-सार

अंगाणं किं सारो ? आयारो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 372]

— ***आचारांग निर्युक्ति*** - *16*

जिणवाणी (अंग-साहित्य) का सार क्या है ? 'आचार' सार है।

100 आचरण से निर्वाण

सारो परूवणाए चरणं तस्स विय होइ निव्वाणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 372]

— ***आचारांग निर्युक्ति*** - *17*

प्ररूपणा का सार है — आचरण। आचरण का सार (अन्तिमफल) है - निर्वाण।

101 स्वाध्याय तप - निर्मल

सज्झाय सज्झाणरयस्स ताइणो, अपाव भावस्स तवेरयस्स ।
विसुज्झइ जं से मलं पुरे कडं, समीरियं रूप्पमलं व जोइणा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 387]

— ***दशवैकालिक*** - *8/63*

जैसे अग्नि द्वारा तपाए हुए सोने-चाँदी का मैल दूर हो जाता है वैसे ही स्वाध्याय-सद्ध्यान में लीन, षट्काय रक्षक, शुद्ध अन्त:करण एवं तपश्चर्या में रत साधु का पूर्व संचित कर्म-मैल नष्ट हो जाता है।

102 त्रस-हिंसा निषेध

तसे पाणे न हिंसेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 387]

— **दशवैकालिक** - **8/12**

चलते-फिरते जीवों की हिंसा मत करो ।

103 स्व-पर रक्षक

तव चिमं जोगयं च, सज्झाय जोगं च सया अहिट्ठिए ।
सूरे व सेणाए समत्त माउहे, अलमप्पणो होइ अलं परेसिं ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 2 पृ. 387]
— *दशवैकालिक - 8/62*

जो श्रमण तपयोग, संयमयोग एवं स्वाध्याय-योग में सदा निष्ठापूर्वक प्रवृत्ति करता है, वह अपनी और दूसरों की रक्षा करने में उसीप्रकार समर्थ होता है जिसप्रकार सेना से युक्त समग्र आयुधों से सुसज्जित शूरवीर ।

104 अनभ्र चन्द्र सम श्रमण

से तारिसे दुक्खसहे जिइंदिए, सुएण जुत्ते अममे-अकिंचणे ।
विरायइ कम्म घणम्मि अवगए, कसिणब्भपुडागमेव चंदिमित्ति ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 2 पृ. 387]
— *दशवैकालिक - 8/64*

जो श्रमण सर्व गुणों से युक्त हैं, दु:खों को समभावपूर्वक सहन करनेवाला है, जितेन्द्रिय, श्रुत से युक्त, ममत्व-रहित और अकिंचन है, वह कर्मरूपी मेघों से दूर होने पर वैसे ही सुशोभित होता है जैसे सम्पूर्ण अभ्रपटल से मुक्त चन्द्रमा ।

105 निष्काम आचार

नो कित्ति-वण्ण सद्द-सिलोगट्ठयाए आयार महिट्ठेज्जा ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 2 पृ. 389]
— *दशवैकालिक - 9/4/5*

आचार का पालन कीर्ति, वर्ण (यश) शब्द और श्लाघा के लिए नहीं होना चाहिए ।

106 अप्रमत्त-साधक

जे ते अप्पमत्त संजता ते णं
नो आयारंभा नो परारम्भा, जाव आणारम्भा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 392]

— ***भगवती 1/1/7 (2)***

आत्म-साधना में अप्रमत्त रहनेवाले साधक, न अपनी हिंसा करते हैं, न दूसरों की; वे सर्वथा - अहिंसक रहते हैं ।

107 शोक नहीं

अलाभोत्ति न सोएज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 393]

— ***आचारांग 1/2/5/89***

(इष्ट वस्तु का) लाभ न होने पर शोक नहीं करें ।

108 संग्रह-वृत्ति-त्याग

बहुंपि लद्धुं ण णिहे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 393]

— ***आचारांग - 1/2/5/89***

अधिक मिलने पर भी संग्रह न करें ।

109 आहार की अनासक्ति

लाभोत्ति ण मज्जेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 393]

— ***आचारांग 1/2/5/89***

(इष्ट वस्तु का) लाभ होने पर अहंकार न करें ।

110 परिग्रह से दूर

परिग्गहाओ अप्पाणं अवसक्केज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 393]
एवं [भाग-4 पृ. 2737]

— ***आचारांग - 1/2/5/89***

साधक परिग्रह से अपने आपको दूर रखें ।

111 मुनि का आहार

लद्धे आहारे अणगारे मातं जाणेज्जा ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 2 पृ. 393]

— *आचारांग - 1/2/5/89*

आहार प्राप्त होने पर मुनि आगम के अनुसार उस भोजन का परिमाण जाने अर्थात् जितना आवश्यक हो उतना ही ग्रहण करें।

112 द्विविध बन्धन

दुहाओ छित्ता नेयाइ ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 2 पृ. 393]

— *आचारांग - 1/1/5/88*

एवं 1/8/3

भिक्षु राग-द्वेष दोनों बन्धनों को छेदकर नियमित जीवन जीता है।

113 आरम्भ-निवृत्ति

आरंभा विरमेज्ज सुव्वते ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 2 पृ. 398]

— *सूत्रकृतांग - 1/2/1/3*

सुव्रती आरम्भ के कार्यों से दूर रहे।

114 उद्‌बोधन

णो सुलभा सुगई वि पेच्चओ ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 2 पृ. 398]

— *सूत्रकृतांग - 1/2/1/3*

मरने के बाद जीव को सद्‌गति आसानी से प्राप्त नहीं होती। (अत: जो कुछ सत्कर्म करना है यहीं करो।)

115 आलम्बन

सालंबणो पडंतो, अप्पाणं दुग्गमेऽवि धारेइ ।
इय सालंबण सेवा, धारेइ जइं असढभावं ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 2 पृ. 421]

— आवश्यक निर्युक्ति - 3/1186

किसी आलम्बन के सहारे दुर्गम गर्त आदि में नीचे उतरता हुआ व्यक्ति अपने को सुरक्षित रख सकता है । इसीतरह ज्ञानादिवर्धक किसी विशिष्ट हेतु का आलम्बन लेकर अपवाद मार्ग में उतरता हुआ सरलात्मा साधक भी अपने को दोष से बचाए रख सकता है ।

116 विशिष्ट-ज्ञान

सालंबसेवी समुवेति मोक्खं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 421]
एवं [भाग-7 पृ. 778]

— ***व्यवहारभाष्य पीठिका - 184***

जो साधक किसी विशिष्ट ज्ञानादि हेतु से अपवाद (निषिद्ध) का आचरण करता है वह भी मोक्ष प्राप्त करने का अधिकारी है ।

117 यथार्थ-आत्मलोचन

जह बालो जंपंतो कज्जमकज्जं व उज्जुयं भणइ ।
तं तह आलोएज्जा मायामय विप्पमुक्को उ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 428-431]

— ***ओघनिर्युक्ति-801***

बालक जो भी उचित या अनुचित कार्य कर लेता है, वह सब सरल भाव से कह देता है इसीप्रकार साधक को भी गुरुजनों के समक्ष दंभ और अभिमान से रहित होकर यथार्थ आत्मालोचन करना चाहिए ।

118 कर्मभार-मुक्ति

उद्धरियं सव्व सल्लो आलोइय निंदिओ गुरु सगासे ।
होइ अतिरेग लहुओ, ओहरिय भरोव्व ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 432]

— ***ओघनिर्युक्ति - 806***

जो साधक गुरुजनों के समक्ष मन के समस्त शल्यों (काँटों) को निकाल कर आलोचना, निन्दा (आत्म-निंदा) करता है, उसकी आत्मा उसीप्रकार हल्की हो जाती है जैसे—सिर का भार उतार देने पर भारवाहक ।

119 विश्वमैत्री

मित्ति मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झ ण केणइ ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 2 पृ. 432]
एवं [भाग-5 पृ. 317]

– *महानिशीथ 1/59 एवं श्राद्धप्रतिक्रमण 49*

समस्त प्राणियों के साथ मेरी मित्रता है। किसी के साथ भी मेरा वैर विरोध नहीं है।

120 प्रमाणोपेत आहार

बत्तीसं किर कवला, आहारो कुच्छि पूरओ भणिओ ।
पुरिसस्स महिलाए, अट्ठावीसं भवे कवला ॥

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 2 पृ. 449]

– *पिण्ड निर्युक्ति गाथा 642*

सामान्यतया पुरुष के लिए (श्रमण) बत्तीस कवल जितना आहार और स्त्री (श्रमणी) के लिए अट्ठावीस कवल जितना आहार प्रमाणोपेत कहा जाता है।

121 आलोचना : पर-साक्षी

छत्तीस गुणसम्पन्ना गण्णते णावि अवस्स कायव्वा ।
परसक्खिया विसोही, सुट्ठु वि ववहार कुसलेण ॥
जह कुसलो वि वेज्जो, अन्नस्स कहेइ अत्तणो वाही ।
विज्जस्स य सोयंतो, पडिकम्मं समारभतो ॥

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 2 पृ. 450]

– *ओघनिर्युक्ति - 794/795*

आचार्य के छत्तीस गुणों से समन्वित एवं श्रेष्ठ ज्ञान व क्रिया-व्यवहार आदि में विशेष निपुण श्रमण भी पाप-शुद्धि पर-साक्षी से ही करे, अपने आप नहीं। जैसे परम कुशल वैद्य भी अपनी बीमारी दूसरे वैद्य से कहता है, उससे ही इलाज करवाता है एवं उस वैद्य के कथनानुसार कार्य भी करता है; वैसे ही आलोचक प्रायश्चित्त-विधि में स्वयं दक्ष होते हुए भी अपने दोषों की आलोचना प्रकट रूप से अन्य के समक्ष करे।

122 आलोचना से ऋजुता

आलोयणाए णं उज्जुभावं च जणयइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 465]

— ***उत्तराध्ययन*** - *29/7*

आलोचना से ऋजुता-निष्कपटता के भाव पैदा होते हैं ।

123 सांध्य आवश्यक

समणेण सावएण य अवस्स कायव्व हवति जम्हा ।
अंतो अहो निसिस्सउ तम्हा आवस्सयं नाम ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 472]

— ***अनुयोगद्वार*** - *29-3*

दिन-रात की संधि के समय श्रमण-श्रावक को अवश्य करने योग्य होने से इसे 'आवश्यक' कहा गया है ।

124 शुभाशुभ-कर्म-सञ्चय

मैत्र्यादिवासितं चेतः, कर्म स्यूते शुभात्मकं ।
कषायविषयाक्रान्तं, वितनोत्यशुभं मनः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 503]

— ***योगशास्त्र*** - *4/75*

मैत्री आदि चार भावनाओं से सुवासित किया हुआ मन शुभ कर्म उत्पन्न करता है जबकि क्रोध, मान, माया और लोभ रूपी कषाय तथा विषयों से व्याप्त हुआ मन अशुभ कर्म सञ्चित करता है ।

125 सत्यासत्यवचन

शुभार्जनाय निर्मिथ्यं, श्रुतज्ञानाश्रितं वचः ।
विपरीतं पुनर्ज्ञेयमशुभार्जनहेतवे ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 503]

— ***योगशास्त्र*** - *4/76*

आगमानुसारी सत्यवचन तथा उससे विपरीत वचन क्रमशः शुभ और अशुभ कर्म की प्राप्ति कराते हैं ।

126 शुभाशुभ कर्म उपार्जन

शरीरेण सुगुप्त शरीरी चिनुते शुभम् ।
सततारम्भिणा जन्तुघातकेनाशुभं पुनः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 503]
— ***योगशास्त्र - 4/77***

शुभ प्रवृत्तिवाले शरीर द्वारा प्राणी शुभ कर्म सञ्चित करता है और हिंसक तथा पाप-प्रवृत्तिवाले शरीर द्वारा वह अशुभ कर्म उपार्जित करता है ।

127 अशुभ-कर्म-हेतु

कषाया विषया योगाः प्रमादाविरती तथा ।
मिथ्यात्वमार्तरौद्रे चेत्यशुभं प्रति हेतवः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 503]
— ***योगशास्त्र - 4/78***

कषाय, विषय, योग, प्रमाद, अविरति, मिथ्यात्व और आर्त-रौद्र ध्यान — ये सब अशुभ कर्म के हेतु हैं ।

128 धर्मोपदेश - पद्धति

अणुवीइ भिक्खू धम्ममाइक्खमाणेणो अत्ताणं,
आसादेज्जा णो परं आसादेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 512]
— ***आचारांग 1/6/5/97***

विवेक पूर्वक धर्म की व्याख्या करता हुआ भिक्षु न तो अपने आपको पीड़ा पहुँचाए और न दूसरे को पीड़ा पहुँचाए ।

129 अनुग्रहार्थ - प्राकृत - रचना

बाल-स्त्री-मूढ-मूर्खाणां, नृणां चारित्रकाङ्क्षिणाम् ।
अनुग्रहार्थं तत्त्वज्ञैः, सिद्धान्तः प्राकृतः कृतः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 512]
— ***धर्मबिन्दु सटीक 2/69 [60]***

बाल, स्त्री, मूढ व मूर्ख मनुष्यों तथा चारित्र ग्रहण करने की इच्छावालों पर अनुग्रह करने के लिए तत्त्वज्ञों ने सिद्धान्त की रचना प्राकृत में की है।

130 महामुनि - असंदीनद्वीप

जहा से दीवे असंदीणे एवं से भवति सरणं महामुणी ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 512]

— ***आचारांग - 1/6/5/197***

महामुनि संसार-प्रवाह में डूबते हुए जीवों के लिए वैसे ही शरणभूत होता है। जैसे — समुद्र में डूब रहे जलयात्रियों के लिए असंदीनद्वीप।

131 रसासक्ति

विषया विनिवर्तन्ते, निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्ज रसोऽप्येवं, परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 548]

— ***भगवद्गीता 2/59***

यद्यपि इन्द्रियों द्वारा विषयों को ग्रहण नहीं करनेवाले पुरुष के भी केवल विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, परन्तु राग (आसक्ति) निवृत्त नहीं होता और स्थिरबुद्धि पुरुष का तो राग भी परमात्मा को साक्षात् करके निवृत्त हो जाता है।

132 लङ्घन हितकर

ज्वरादौ लङ्घनं हितं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 548]

— ***चरक संहिता -ज्वर प्रकरण***

ज्वरादि में लङ्घन — उपवास हितकारी है।

133 भूख-वेदना

नत्थि छुहाए सरिसया वेयणा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 548]

— ***ओघनिर्युक्ति भाष्य - 290***

संसार में भूख के समान कोई वेदना नहीं है।

134 आहार त्याग किसलिए ?

छहिं ठाणेहिं समणे निग्गंथे आहारं वोच्छिंदमाणे णाइक्कमइ तंजहा —

आयंके उवसग्गे तितिक्खया बंभचेर गुत्तीसु ।
पाणिदया तवहेउं, सरीरवोच्छेयणट्ठाए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 548]

— ***पिण्ड निर्युक्ति 96***

छह कारणों से श्रमण-निर्ग्रन्थ आहार का त्याग करता हुआ जिनाज्ञा का उल्लंघन नहीं करता । जैसे — रोग एवं उपसर्ग होने पर, ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकने पर, जीवदया न पल सकने पर, तपश्चर्या करने के लिए और अनशनादि द्वारा शरीर छोड़ने के लिए ।

135 संसार-वलय से मुक्त

नो जीवियं णो मरणाभिकंखी ।
चरेज्ज वलया विमुक्के ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 550]

— ***सूत्रकृतांग 1/10/24***

साधु न तो जीवन की आकांक्षा करे और न मरण की । वह संसारचक्र से मुक्त होकर संयम-पथ में विचरण करें ।

136 समाधिकामी निरपेक्ष

निक्खम्म गेहाउ निरावकंखी ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 550]

— ***सूत्रकृतांग 1/10/24***

समाधिकामी साधु अपने घर से निष्क्रमण कर (दीक्षा लेकर) अपने जीवन के प्रति निराकांक्षी हो जाए ।

137 साधक-परिशुद्ध

सुद्धे सिया जाए न दूसएज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 550]

— *सूत्रकृतांग 1/10/23*

साधक भलीभाँति शुद्ध होता हुआ समय व्यतीत करे और दूषित नहीं होवे ।

138 संयम पराक्रम

धितिमं विमुक्केण य पूयणट्ठी ।
न सिलोयगामी य परिव्वएज्जा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 550]
— *सूत्रकृतांग 1/10/23*

धैर्यशाली पुरुष विकारों से मुक्त होता हुआ अपने लिए पूजा और यशकीर्ति की इच्छा नहीं करे तथा संयमशील होता हुआ विचरे ।

139 अनशन-लाभ

आहार पच्चक्खाणेणं जीवियासंसप्पओगं वोच्छिन्दइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 554]
— *उत्तराध्ययन 29/35*

अनशन से जीव जीवन की लालसा से छूट जाता है ।

140 अहितकारिणी निन्दा -

अहऽसेयकरी अन्नेसिं इंखिणी ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 559]
— *सूत्रकृतांग 1/2/2/1*

दूसरों की निन्दा अश्रेयस्कारिणी है अर्थात् हितकारिणी नहीं है ।

141 अनुपम सर्वोत्तम सूर्यप्रकाश

तावद् गर्जति खद्योतस्तावद् गर्जति चन्द्रमाः ।
उदिते तु सहस्रांशौ न, खद्योतो न चन्द्रमाः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 572]
— *कल्पसुबोधिका सटीक - 2*

जुगनू तब तक चमकता है, चन्द्रमा तब तक प्रकाशमान रहता है, जब तक सूर्य उदित न हो, मगर सूर्योदय होनेपर न तो जूगनू का और न चन्द्रमा का प्रकाश रहता है ।

142 त्रिपदी

उप्पन्ने वा, विगमे वा धुवेति वा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 573]

— ***स्याद्वादमंजरी* - 263**

प्रत्येक पदार्थ उत्पन्न भी होता है, नष्ट भी होता है और स्थिर भी रहता है — यही तीर्थंकर प्रदत्त 'त्रिपदी' कहलाती है ।

143 आत्मा शरीर से भिन्न

क्षीरे घृतं तिले तैलं काष्ठेऽग्निः सौरभं सुमे ।
चन्द्रकान्ते सुधा यद्वत् तथात्माप्यङ्गतः पृथक् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 573]

— ***कल्पसुबोधिका सटीक - एवं***
श्री कल्पसूत्रबालावबोध पृ. 254

जैसे दूध में घी, तिल में तेल, काष्ठ में अग्नि, फूल में सुगन्ध, चंद्र की कान्ति में अमृत विद्यमान है, वैसे ही आत्मा भी शरीर में रहते हुए भी शरीर से भिन्न है ।

144 विषय-दौड़

पुरः पुरः स्फुर तृष्णा, मृग तृष्णाऽनुकारिषु ।
इन्द्रियार्थेषु धावन्ति, त्यक्त्वा ज्ञानाऽमृतं जड़ाः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 597]

— ***ज्ञानसार* - 7/6**

जिन्हें उत्तरोत्तर बढ़ती हुई तृष्णा है, वे मूर्खजन ज्ञानरूपी अमृतरस का त्याग कर मृगतृष्णा के समान इन्द्रियों के विषयों की ओर दौड़ते रहते हैं ।

145 मूर्ख की मृग तृष्णा

गिरिमृत्स्नां धनं पश्यन् धावतीन्द्रियः मोहितः ।
अनादि निधनं ज्ञानं-धनं पार्श्वे न पश्यति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 597]

— *ज्ञानसार - 7/5*

इन्द्रिय-पाश में फंसा जीव मोह से पर्वत की मिट्टी को धन मानकर दौड़ता है, परन्तु अन्तस्थ अनादि अनन्त ज्ञान-धन को वह नहीं देख सकता है ।

146 इन्द्रिय परवश की दुर्दशा

पतङ्गभृंग मीनेभ सारङ्गा यान्ति दुर्दशाम् ।
एकैकेन्द्रिया दोषाच्चेत् दुष्टैस्तैः किं न पञ्चभिः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 597]

— *ज्ञानसार 7/7*

जब पतंग, भ्रमर, मत्स्य, हाथी मृग, एक-एक इन्द्रिय-दोष से भी दुर्दशा प्राप्त करते हैं तब फिर पाँचों दुष्ट इन्द्रियों के वश हुए जीव का क्या कहना ?

147 विकार विषवृक्ष

वृद्धास्तृष्णाजलाऽपूर्णैरालवालैः किलेन्द्रियः ।
मूर्च्छामतूच्छां यच्छन्ति, विकार विषपादपाः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 597]

— *ज्ञानसार 7/2*

तृष्णारूपी जल से, लबालब भरी इन्द्रियरूपी क्यारियों से फले-फूले विषय-विकार रूपी विषवृक्ष जीवात्मा को तीव्र-मूर्च्छा-मोह पैदा करते हैं ।

148 इन्द्रिय-विजेता बनो

बिभेषि यदि संसारान् मोक्ष-प्राप्तिं च काङ्क्षसि ।
तदेन्द्रिय जयं कर्तुं स्फोरय स्फारपौरूषम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 597]

— *ज्ञानसार 7/1*

यदि तुम संसार से भयभीत हो और मोक्ष-प्राप्ति चाहते हो, तो अपनी इन्द्रियों पर विजय पाने के लिए दृढ़ पराक्रम करो ।

149 अन्तरात्म-तृप्ति

सरित्सहस्र दुष्पूर समुद्रोदर सोदरः ।
तृप्तिमानेन्द्रियग्रामो, भव तृप्तोऽन्तरात्मना ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 597]
— ***ज्ञानसार 7/3***

हजारों नदियों से समुद्र दुष्पूर होता है। इन्द्रियाँ भी तृप्त नहीं होती है। अत: अन्तरात्मा से ही तृप्त बन।

150 प्रमाणभूत अन्तर

तुल्लेवि इंदियत्थे, एगो सज्जइ विरज्जइ एगो ।
अब्भत्थं तु पमाणं, न इंदियत्था जिणावेंति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 598]
— ***व्यवहारभाष्य - 2/54***

इन्द्रियों के विषय समान होते हुए भी एक उनमें आसक्त होता है, और दूसरा विरक्त। जिनेश्वरदेव ने बताया है कि इस सम्बन्ध में व्यक्ति का अन्तर् हृदय ही प्रमाणभूत है, इन्द्रियों के विषय नहीं।

151 नारी पंक –

पंकभूयाउ इत्थिओ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 615]
— ***उत्तराध्ययन 2/19***

स्त्रियाँ कीचड़ के समान होती हैं।

152 आत्मान्वेषक

चरेज्ज अत्तगवेसए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 615]
— ***उत्तराध्ययन 2/19***

आत्मस्वरूप की खोज में विचरण करें।

153 स्त्री संसर्ग-दुःख

पुव्वंदण्डा पच्छा फासा, पुव्वं फासा पच्छा दंडा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 616]

— ***आचारांग*** *- 1/5/4/164*

स्त्रीसंग में रत व्यक्तियों को कहीं हीं पहले संकट उठाने पड़ते हैं और बाद में स्पर्श-सुख प्राप्त होता है तो कहीं पहले स्पर्श-सुख और बाद में संकट सहने पड़ते हैं ।

154 वासनोत्पीड़ित निर्बलाहारी

उब्बाधिज्जमाणे गामधम्मेहिं अविनिब्बलासए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 616]

— ***आचारांग 1/5/4/164***

विषय-वासना से पीड़ित होने पर साधक निर्बल-हल्का भोजन करें ।

155 उणोदरिका तप

अवि ओमोदरियं कुज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 616]

— ***आचारांग*** *- 1/5/4/164*

भूख की अपेक्षा कम खाए ।

156 कायोत्सर्ग

अवि उड्ढं ठाणं ठाएज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 616]

— ***आचारांग*** *- 1/5/4/164*

उर्ध्वस्थान पर खड़े रहकर कायोत्सर्ग करें ।

157 अनशन

अवि आहारं वोच्छिदेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 616]

— ***आचारांग*** *- 1/5/4/164*

काम-भोगों से पीड़ित होने पर सर्वथा आहार का परित्याग करें ।

158 आकृष्ट मन का त्याग

अवि चए इत्थीसु मणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 616]

— ***आचारांग - 1/5/4/164***

स्त्रियों के प्रति आकृष्ट होने वाले मन का परित्याग करें ।

159 विचरण

अविगामाणुगामं दूइज्जेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 616]

— ***आचारांग - 1/5/4/164***

ग्रामानुग्राम विहार करें ।

160 काम-से कलह और आसक्ति

इच्चेए कलहा संगकरा भवंति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 616]

— ***आचारांग 1/5/4/164***

ये काम-भोग, कलह और आसक्ति पैदा करनेवाले होते हैं ।

161 प्रभूतज्ञानी का पर्यालोचन

से पभूयदंसी.... सदा जते दट्ठुं विप्पडिवेदेति
अप्पाणं किमेस जणो करिस्सति ?

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 616]

— ***आचारांग - 1/5/4/164***

विपुलदर्शी, विपुलज्ञानी सदा इन्द्रियजयी पुरुष (ब्रह्मचर्य से विचलित करने के लिए उद्यत स्त्रीजन को) देखकर अपने मन में विचार करता है "वह स्त्रीजन मेरा क्या करेगा ?"

162 तीन अदृश्य

जल मज्झे मच्छपयं, आगासे पक्खियाण पयपंती ।
महिलाण हियमग्गो, तिन्नवि लोए न दीसंति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 618]

— ***गच्छाचारपयन्ना सटीक - 2 अधि.***

जल की गहराई में मत्स्य के पैर, आकाश में पक्षियों के पैरों की पंक्ति और महिलाओं का अन्तर्हृदय - ये तीनों इस संसारमें दिखाई नहीं देते ।

163 देव के लिए भी असंभव

अश्वप्लुतं माधवगर्जितं च,
स्त्रीणां चरित्रं भवितव्यता च ।
अवर्षणञ्चाप्यतिवर्षणं च,
देवो न जानाति कुतो मनुष्यः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 618]

— ***गच्छाचारपयन्ना सटीक - 2 अधि.***

अश्व का उछलना, मधुमास में मेघों की गर्जना, स्त्रियों का चरित्र, भवितव्यता (होनहार) और अतिवृष्टि-अनावृष्टि-इतनी बातें देव भी नहीं जानते तो फिर मनुष्यों की बात ही क्या ?

164 अदृढ़ मन

यदि स्थिरा भवेत् विद्युत्,
तिष्ठन्ति यदि वायवः ।
दैवात्तथापि नारीणां,
न स्थेम्ना स्थीयते मनः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 618]

— ***गच्छाचारपयन्ना सटीक 2 अधि.***

कदाचित् विद्युत् स्थिर हो जाय और संयोग से वायु भी ठहर जाय; किन्तु स्त्रियों का मन प्राय: दृढ़ नहीं रहता ।

165 धर्मवीर

धम्मम्मि जो दढमइ, सो सूरो सति ओ य वीरो य ।
णहु धम्मणिरूस्साहो, पुरिसो सूरो सुवलिओ य ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 2 पृ. 624]

— *सूत्रकृतांग निर्युक्ति* - 52

जो व्यक्ति धर्म में दृढ निष्ठा रखता है, वस्तुत: वही बलवान् है, वही शूरवीर है। जो धर्म में उत्साहहीन है, वह वीर एवं बलवान् होते हुए भी न वीर है; न बलवान् है।

166 इन्द्रिय बलवत्ता

बलवानिन्द्रयग्रामो विद्वांसमपि कर्षति।

(पंडितोप्यऽत्र मुह्यति)

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 2 पृ. 625]

— *मनुस्मृति 2/215*

इन्द्रिय समूह बड़ा बलवान् होता है, वह अवसर आने पर विद्वान् को भी अपनी ओर आकर्षित कर लेता है।

167 एकासन एकान्त निषेध

मात्रा स्वस्त्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 2 पृ. 625]

— *मनुस्मृति 2/215*

पंडितजन को चाहिए कि माता, बहन तथा कन्या के साथ भी एकान्त में एक आसन पर न बैठे।

168 रस-लोलुप

सीहं जहा च कुणिमेणं निब्भय मेग चरं पासेणं।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 2 पृ. 626]

— *सूत्रकृतांग 1/4/1/8*

निर्भय अकेला विचरनेवाला सिंह भी मांस के लोभ से जाल में फँस जाता है (वैसे ही आसक्तिवश मनुष्य भी)।

169 विष-कण्टक

तम्हा उ वज्जए इत्थी, विसलित्तं च कंटगं णच्चा।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 2 पृ. 626]

— *सूत्रकृतांग 1/4/1/11*

ब्रह्मचारी, स्त्री-संसर्ग को विषलिप्त कंटक के समान समझकर उससे बचता रहे।

170 स्त्री के साथ विहार निषेध

णो विहरे सहणमित्थीसु

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 626]

— *सूत्रकृतांग 1/4/1/12*

स्त्रियों के साथ विहार मत करो।

171 कुशील-वचन —

वाया वीरियं कुसीलाणं।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 627]

— *सूत्रकृतांग - 1/4/1/17*

सच है कुशीलों के वचन में ही शक्ति होती है (कर्म में नहीं)।

172 भोगासक्त-प्राणी

गिद्धा सत्ता कामेहिं।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 627]

— *सूत्रकृतांग 1/4/1/14*

प्राणी काम-भोगों में आसक्त हैं।

173 स्त्री-परिचय-निषिद्ध

अविधूयराहिं सुण्हाहिं धातीहिं अदुवदासीहिं।
महतीहिं वा कुमारीहिं संथवं से णेव कुज्जा अणगारे॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 627]

— *सूत्रकृतांग 1/4/1/13*

चाहे पुत्री हो, पुत्रवधु हो, धाय हो या दासी हो, विवाहित हो या कुमारी हो — श्रमण इन सब में किसी के भी साथ सम्पर्क-परिचय नहीं करें।

174 माया महाठगिनी हम जानी

अन्नं मणेण चिंतेति अन्नं वायाइ कम्मुणा अन्नं।
तम्हा ण सद्दहे भिक्खू, बहुमायाओ इत्थिओ णच्चा॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 628]
— ***सूत्रकृतांग 1/4/1/24***

स्त्रियाँ मन से कुछ और सोचती हैं, वाणी से कुछ और बोलती हैं और कर्म से कुछ और ही करती हैं। इसलिए स्त्रियों को बहुत मायावाली जानकर उन पर विश्वास न करें।

175 मायाविनी नारी

बहुमायाओ इत्थिओ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 628]
— ***सूत्रकृतांग - 1/4/1/24***

स्त्रियाँ बहुत मायाविनी होती हैं।

176 स्त्री-संसर्ग

जतुकुंभे जहा उवज्जोती संवासे विदु विसीएज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 629]
— ***सूत्रकृतांग 1/4/1/26***

जैसे लाख से निर्मित घड़ा आग से पिघल जाता है, वैसे ही बुद्धिमान् पुरुष भी स्त्री-संसर्ग से स्खलित हो जाते हैं।

177 दोहरी मूर्खता

बालस्स मंदयं बितियं जं च कडं अवणाजई भुज्जो ।
दुगुणं करेइ से पावं, पूयण कामए विसण्णेसी ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 629]
— ***सूत्रकृतांग 1/4/1/29***

मूर्ख साधक की दूसरी मूर्खता यह है कि वह बार-बार किए हुए पापकर्मों को 'नहीं किया' कहता है। अत: वह दुगुना पाप करता है। वह जगत् में अपनी पूजा चाहता है, किन्तु असंयम की इच्छा करता है।

178 प्रलोभन

णीवारमेयबुज्झेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 629]
— ***सूत्रकृतांग 1/4/1/31***

प्रलोभन को साधु सूअर को फंसानेवाले चावल के दाने के समान समझे ।

179 मोहग्रस्त - मूर्खात्मा

बद्धे य विसयपासेहिं मोहमागच्छती पुणो मंदे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 629]

— *सूत्रकृतांग - 1/4/1/31*

विषय-पाशों से बँधी हुई मूर्खात्मा बार-बार मोहग्रस्त होती है ।

180 स्त्री-संसर्ग त्याग

एवित्थियाहिं अणगारा ।
संवासेण णासमुवयंति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 629]

— *सूत्रकृतांग 1/4/1/27*

स्त्रियों के संसर्ग से अणगार पुरुष भी शीघ्र ही नष्ट (संयमभ्रष्ट) हो जाते हैं ।

181 अग्नि बिन जलती काया

पुत्रश्च मूर्खो विधवा च कन्या, शठं मित्रं चपलं कलत्रम् ।
विलासकालेऽपि दरिद्रता च विनाग्निना पञ्च दहन्ति देहम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 636]

— *नग्गय. 31*

मूर्ख पुत्र, विधवा कन्या, धूर्त मित्र, चञ्चल स्त्री और भोग-विलास के समय में दरिद्रता ये पाँचों चीजें बिना आग के शरीर को जलाती है ।

182 ब्रह्मचर्य-गरिमा —

इत्थिओ जे ण सेवन्ति आदि मोक्खा हु ते जणा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 641]

— *सूत्रकृतांग 1/15/9*

जो पुरुष स्त्रियों का सेवन नहीं करते, वे सर्वप्रथम मोक्षगामी अर्थात् मोक्ष पहुँचने में सबसे अग्रसर होते हैं ।

183 ब्रह्मचर्य

वाउ व जालमच्चेति, पिया लोगंसि इत्थिओ ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 2 पृ. 641]

— *सूत्रकृतांग 1/15/8*

जैसे पवन अग्नि-शिखा को पार कर जाता है, वैसे ही महान् त्यागी पराक्रमी पुरुष स्त्रियों के मोह को उल्लंघन कर जाते हैं ।

184 स्त्रीवशी - अज्ञ

इत्थीवसंगता बाला, जिण सासण परम्मुहा ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 2 पृ. 651]

— *सूत्रकृतांग - 1/3/4/9*

स्त्री के वशीभूत अज्ञानी जीव जिनशासन से विमुख हो जाते हैं ।

185 अनार्य-लक्षण

अज्झोववन्ना कामेहिं ।

पूयणा इव तरूणए ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 2 पृ. 651]

— *सूत्रकृतांग - 1/3/4/13*

पूतना पिशाचिनी - डाकिनी जैसे छोटे बच्चों पर आसक्त रहती है वैसे ही अज्ञानी-अनार्य काम-भोगों में अत्यधिक आसक्त रहते हैं ।

186 नारी नेह दुस्तर

जहा नदी वेयरणी, दुत्तरा इह संमता ।
एवं लोगंसि नारीओ, दुत्तरा अमतीमता ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 2 पृ. 652]

— *सूत्रकृतांग - 1/3/16*

जिसप्रकार सर्व नदियों में वैतरणी नदी दुस्तर मानी गई है, उसीप्रकार इस लोक में कामिनियाँ अविवेकी साधक पुरुष के लिए दुस्तर मानी गई हैं ।

187 समय-बद्ध –

जेहिं काले परिक्कंतं, न पच्छा परितप्पए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 652]

— ***सूत्रकृतांग - 1/3/4/15***

जो समय पर अपना कार्य कर लेते हैं, वे बाद में पछताते नहीं ।

188 सर्व विघ्नजयी

जेहिं नारीण संजोगा, पूयणापिट्ठतो कता ।
सव्वमेयं निरा किच्चा, ते ठिता सुसमाहिए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 652]

— ***सूत्रकृतांग 1/3/4/17***

जिन पुरुषों ने स्त्रियों के संसर्ग तथा काम-विभूषा से पीठ फेर ली हैं, वे साधक इन सभी विघ्नों को पराजित करके सुसमाधि में स्थित रहते हैं ।

189 पीछे पछताय होत क्या ?

अणागयमपस्सन्ता, पच्चुप्पन्नगवेसगा ।
ते पच्छा परितप्पन्ति, झीणे आउम्मि जोव्वणे ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 652]

— **सूत्रकृतांग 1/3/4/14**

जो व्यक्ति भविष्य में होनेवाले दुःखों की तरफ न देखकर केवल वर्तमान-सुख को ही खोजते हैं, वे आयु और यौवन-काल बीत जाने पर पश्चात्ताप करते हैं ।

190 बंधन-मुक्त

धीरा बंधणुम्मुक्का ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 652]

— ***सूत्रकृतांग 1/3/4/15***

धैर्यशाली बंधन से उन्मुक्त होते हैं ।

191 मृषा-वर्जन

मुसावायं विवज्जेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 652]

— ***सूत्रकृतांग 1/3/4/19***

झूठ को छोड़े ।

192 अस्तेय-त्याग

अदिण्णादाणाइ वोसिरे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग-2 पृ. 652]

— ***सूत्रकृतांग 1/3/4/19***

चोरी का त्याग करो ।

193 सुव्रती

सुव्वते समिते चरे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 652]

— ***सूत्रकृतांग 1/3/4/19***

सुव्रती समितियों का परिपालन करता हुआ विचरण करें ।

194 शास्त्र

हस्तस्पर्श समं शास्त्र तत एव कथञ्चन ।
अत्र तन्निश्चयोपि स्यात् तथा चन्द्रोपरागवत् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 671]

— ***योगबिन्दु 316 एवं द्वा० 16 द्वा. 26***

अन्धा मनुष्य जैसे हाथ से छूकर किसी वस्तु के सम्बन्ध में अनुमान करता है, उसीप्रकार शास्त्र के सहारे व्यक्ति आत्मा, कर्म आदि पदार्थों के विषय में निश्चय कर लेता है । जैसे चन्द्र को राहु का स्पर्श शास्त्रों से ही जाना जाता है ।

195 ज्ञान-ज्योति

दव्वुज्जोउ जोओ पगासई परमियम्मि खित्तम्मि ।
भावुज्जोउ जोओ, लोगालोगं पगासेइ ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 2 पृ. 772]

— *आवश्यक निर्युक्ति 2/1075*

सूर्य आदि का द्रव्य प्रकाश परिमित क्षेत्र को ही प्रकाशित करता है, किन्तु ज्ञान का प्रकाश तो समस्त लोकालोक को प्रकाशित करता है ।

196 धर्म का लक्षण

दुर्गति प्रसृतान् जन्तून् यस्माद्धारयते पुनः ।
धत्ते चैतान् शुभे स्थाने, तस्माद्धर्म इति स्मृतः ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 2 पृ 773]
एवं [भाग-4 पृ 2665]

— *आवश्यकमलयगिरि द्वितीय खण्ड*

जो दुर्गति (पतन के गड्ढे) में पड़ते हुए प्राणियों - को बचाता है और सद्गति (उन्नति के स्थान) में पहुँचाता है, वह 'धर्म' कहलाता है ।

197 अध्यात्म-स्नान

उदगस्स फासेण सिया य सिद्धि सिज्झंसु पाणा बहवे दगंसि ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 2 पृ. 797]

— *सूत्रकृतांग - 1/7/14*

यदि जल स्पर्श (जलस्नान) से ही सिद्धि प्राप्त हो, तो पानी में रहनेवाले अनेक जीव कभी के मोक्ष प्राप्त कर लेते ?

198 हिंसा

पाणाणि चेवं विणिहंति मंदा ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 2 पृ. 797]

— *सूत्रकृतांग 1/7/16*

मन्दबुद्धिवाले व्यक्ति प्राणियों की हिंसा करते हैं ।

199 अज्ञानी

आसुरियं दिसं बाला, गच्छंति अवसातमं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 881]

— ***उत्तराध्ययन 7/10***

अज्ञानी जीव विवश हुए अंधकाराच्छन्न आसुरी गति को प्राप्त होते हैं ।

200 मूलधन

माणुसत्तं भवे मूलं, लाभो देवगई भवे ।
मूलच्छेदेण जीवाणं, नरग तिरिक्खत्तणं धुवं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 882]

— ***उत्तराध्ययन - 7/16***

मनुष्य जीवन मूल धन है । देवगति उसमें लाभरूप है । मूलधन के नाश होने पर नर्क-तिर्यञ्च गतिरूप हानि होती है ।

201 कर्म-सत्य

कम्म सच्चा हु पाणिणो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 883]

— ***उत्तराध्ययन 7/20***

प्राणियों के कर्म ही सत्य है ।

202 मानुषिक काम,क्षुद्र

जहा कुसग्गे उदगं समुद्देण समं मिणे ।
एवं माणुस्सगा कामा, देवकामाण अन्तिए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 883]

— ***उत्तराध्ययन 7/23***

मनुष्य सम्बन्धी काम-भोग, देव सम्बन्धी काम-भोगों की तुलना में वैसे ही हैं, जैसे कोई व्यक्ति कुश की नोक पर टिके हुए जल-बिन्दु की तुलना समुद्र से करता है ।

203 धीर का धैर्य

धीरस्स परस्स धीरत्तं, सव्व धम्माणुवत्तिणो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 884]

— *उत्तराध्ययन 7/29*

क्षमा, मार्दव आदि समस्त धर्मों का परिपालन करने वाले धीरपुरुष की धीरता को देखो ।

204 मूर्खोपदेश –

उपदेशो हि मूर्खाणां, प्रकोपाय न शान्तये ।
पयःपानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्द्धनम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 887]
— *हितोपदेश 1/4*

मूर्खों को दिया गया उपदेश प्रकोप के लिए होता है, शान्ति के लिए नहीं । सर्पों को दूध पिलाना मात्र उनके विष का वर्धन करना ही है ।

205 मद्यपान–दुर्गुण

विवेकः संयमोज्ञानं, सत्यं शौचं दया क्षमा ।
मद्यात् प्रलीयते सर्वं, तृण्या वह्निकणादिव ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 928]
— *योगशास्त्र – 3/16*

जैसे आग की चिनगारी से घास का ढेर जलकर भस्म हो जाता है वैसे ही मदिरापान से विवेक, संयम, ज्ञान, सत्य, शौच, दया और क्षमा आदि सभी गुण नष्ट हो जाते हैं ।

206 मद्य से हानि

मज्जं दुग्गइ मूलं हिरि सिरि मइ धम्म नासकरं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 928]
— *धर्मसंग्रह – 2/72*

मद्य दुर्गति का मूल है, क्योंकि इससे लज्जा, लक्ष्मी, मति और धर्म का नाश होता है ।

207 अहंकार

सूरं मन्नति अप्पाणं जाव जेतं न पस्सति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1050]
— *सूत्रकृतांग 1/3/1/1*

अपनी शेखी बघारनेवाला क्षुद्रजन तभीतक अपने को शूरवीर मानता है जबतक कि सामने अपने से बली विजेता को नहीं देखता है ।

208 स्नेह-त्याग दुष्कर

एते संगा मणुस्साणं पाताला व अतारिमा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1051]

— ***सूत्रकृतांग 1/3/2/12***

माता-पिता स्वजन आदि का स्नेह सम्बन्ध छोड़ना मनुष्यों के लिए उसीतरह कठिन है जिसतरह अथाह समुद्र को पार करना ।

209 अज्ञ-दुःखी

सीयंति अबुहा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1051]

— ***सूत्रकृतांग - 1/3/2/14***

अज्ञानी दुःखी होते हैं ।

210 स्नेहः एकबंधन

जहा रूक्खं वणे जायं मालुया पडिबंधति ।
एवं णं पडिबंधंति, णातओ असमाहिणा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1051]

— ***सूत्रकृतांग - 1/3/2/10***

जैसे वन में उत्पन्न वृक्ष को मल्लिकालता लिपटकर घेर लेती है उसीप्रकार ज्ञातिजन साधक के चित्त में असमाधि उत्पन्न करके उसे (स्नेह-सूत्र में) बाँध लेते हैं ।

211 श्रेष्ठ धर्म

जीवितं नाहि कंखेज्जा, सोच्चा धम्म अणुत्तरं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1051]

— ***सूत्रकृतांग 1/3/2/13***

श्रेष्ठ धर्म का श्रवण करके जीने की आकांक्षा नहीं करें ।

212 ज्ञाति-स्नेह-बंधन

तं च भिक्खू परिण्णाय सव्वे संगा महासवा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1051]

— ***सूत्रकृतांग 1/3/2/13***

ज्ञाति-संसर्ग को संसार का कारण समझ कर साधु उसका परित्याग करे ।

213 कायर-साधक

कीवा जत्थ य किस्संति, नाय संगेहिं मुच्छिया ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1051]

— ***सूत्रकृतांग 1/3/2/12***

उपसर्ग आने पर ज्ञातिजनों के स्नेह-सम्बन्ध में आसक्त हुए निर्बल-कायर साधक अन्त में घोर क्लेश पाते हैं ।

214 अज्ञ मरियल बैल

तत्थ मंदा विसीयंति, उज्जाणंसि व दुब्बला ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1052]

— ***सूत्रकृतांग - 1/3/2/20***

अज्ञानी साधक उच्च संयममार्ग पर प्रयाण करने में वैसे ही (मनोदुर्बल) दुर्बल होकर बैठ जाते हैं जैसे ऊँची चढाई के मार्ग में मरियल बैल दुर्बल होकर बैठ जाते हैं ।

215 अज्ञानी-साधक-बूढ़ा बैल

तत्थ मंदा विसीयंति उज्जाणंसि जरग्गवा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1052]

— ***सूत्रकृतांग 1/3/2/21***

अज्ञानी साधक संकटकाल में उसीप्रकार खेदखिन्न हो जाते हैं जिसप्रकार बूढ़े बैल चढ़ाई के मार्ग में ।

216 स्वप्रतिष्ठा से बचो

णो विय पूयण पत्थए सिया ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1053]

— ***सूत्रकृतांग 1/2/2/16***

अपनी पुजा-प्रतिष्ठा के प्रार्थी मत बनो ।

217 मोक्ष-मार्ग-समर्पित

पणया वीरा महाविहिं, सिद्धिपहं णेयाउयं धुवं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1053]

— ***सूत्रकृतांग - 1/2/1/21***

जो मुक्ति-मार्ग की ओर ले जानेवाला और ध्रुव है; वीरपुरुष उस महामार्ग के प्रति समर्पित होते हैं ।

218 आत्म-निग्रह

चेच्चा वित्तं च णायओ, आरंभं च सुसंवुडे चरेज्जासि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1053]

— ***सूत्रकृतांग 1/2/1/22***

साधक धन-ज्ञातिजन एवं आरम्भ को छोड़कर आत्म-निग्रही होता हुआ विचरण करें ।

219 मोह मुग्ध

मोह जंति नरा असंवुडा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1053]

— ***सूत्रकृतांग - 1/2/1/20***

इन्द्रियों के दास असंवृत मनुष्य हिताहित निर्णय के क्षणों में मोहमुग्ध हो जाता है ।

220 आध्यात्मिक प्रयोगशाला : तपश्चरण

जहा खलु मइलं वत्थं, सुज्झइ उदगाइएहिं दव्वेहिं ।
एवं भावुवहाणे-ण सुज्झाए कम्ममट्ठविहं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1076]

— ***आचारांग निर्युक्ति - 282***

जैसे जलादि शोधक द्रव्यों से मलिन वस्त्र भी शुद्ध हो जाता है वैसे आध्यात्मिक तप-साधना द्वारा आत्मा ज्ञानावरणादि अष्टविध कर्ममल से मुक्त हो जाता है ।

221 अज्ञानी

सोवधिए हु लुप्पती बाले ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1082]

— ***आचारांग 1/9/1/55***

अज्ञानी मनुष्य परिग्रह से अवश्य ही क्लेश का अनुभव करता है ।

222 उद्दिष्टाहार निषेध

अहाकडं ण से सेवे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1082]

— ***सूत्रकृतांग - 1/9/1/58***

मुनि अपने लिए बना हुआ भोजन सेवन न करें ।

223 यतना सह गमन

पंथ पेही चरे जयमाणे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1083]

— ***आचारांग 1/9/1/61***

साधक यतनापूर्वक जागरुक होकर रास्ते में देखते हुए चले ।

224 निद्रा

णिद्दंपि णो पगामए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1083]

— ***आचारांग - 1/9/2/68***

बहुत निद्रा भी मत लो ।

225 आहार मात्रा विज्ञ

मातण्णे असण पाणस्स ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1083]

— *आचारांग - 1/9/1/60*

मुनि आहार-पानी की मात्रा को जाननेवाला हो ।

226 भिक्षु - अलोलुप

णाणु गिद्धे रसेसु अपडिवण्णे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1083]

— *आचारांग - 1/9/1/60*

असंकल्पित होता हुआ भिक्षु रसों में लोलुप न हो ।

227 मुनि

णोवि य कंडुयए मुणी गातं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1083]

— *आचारांग - 1/9/1/60*

मुनि शरीर को नहीं खुजलाए ।

228 आहार-खोज ऐसे

अहिंसमाणो घासमेसित्था ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1087]

— *आचारांग 1/9/4/105*

किसी को जरा भी कष्ट न देते हुए आहार की खोज करें ।

229 धीरे चलो

मंद परिक्कमे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1087]

— *आचारांग - 1/9/4/105*

धीरे-धीरे चले ।

230 अनर्थ खान

खाणी अणत्थाण उ काम-भोगा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1187]

— *उत्तराध्ययन - 14/13*

काम-भोग अनर्थों की खान है ।

231 अशरण भावना

जाया य पुत्ता न भवंति ताणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1187]

— ***उत्तराध्ययन 14/12***

औरस पुत्र भी शरणभूत या रक्षक नहीं होते ।

232 अल्प-सुखदायी

पकामदुक्खा अनिकाम सोक्खा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1187]

— ***उत्तराध्ययन - 14/13***

ये काम-भोग चिरकाल तक दुःख देते हैं अर्थात् बहुत दुःख और थोड़ा सुख देनेवाले हैं ।

233 निरन्तर भटकाव

परिव्वयन्ते अनियत्तकामे,
अहो य राओ परितप्पमाणे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1187]

— ***उत्तराध्ययन — 14/14***

जो काम-भोगों को नहीं छोड़ते हैं वे अतृप्ति की ज्वाला से संतप्त होते हुए दिन-रात भटकते रहते हैं ।

234 धन की खोज में - प्रमत्त पुरुष

अण्णप्पमत्ते धण मेसमाणे,
पप्पोति मच्चुं पुरिसे जरं च ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1187]

— ***उत्तराध्ययन 14/14***

अन्य के लिए प्रमत्त होकर धन की खोज में लगा हुआ वह पुरुष एक दिन बुढ़ापा एवं मृत्यु को प्राप्त हो जाता है ।

235 प्रमाद मत करो

इमं च मे अत्थि इमं च नत्थि, इमं च मे किच्च इमं अकिच्चं तं एवमेवं लालप्पमाणं, हरा हरंति, त्ति कहं पमाओ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1187]

— ***उत्तराध्ययन - 14/15***

'यह मेरा है और यह मेरा नहीं है ।' यह मुझे करना है और यह नहीं करना है, इसप्रकार व्यर्थ की बकवास करनेवाले व्यक्ति को आयुष्य का अपहरण करनेवाले दिन और काल उठा ले जाते हैं । ऐसी स्थिति में प्रमाद करना कैसे उचित है ?

236 काम, मोक्ष-विपक्षी

संसार मोक्खस्स विपक्ख भूया ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1187]

— ***उत्तराध्ययन 14/13***

सारे-काम-भोग संसार-मुक्ति के विरोधी हैं ।

237 शुक-विद्या

वेया अधीया ण भवंति ताणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1187]

— ***उत्तराध्ययन - 14/12***

अध्ययन कर लेने मात्र से वेद-शास्त्र रक्षा नहीं कर सकते ।

238 क्षणिक-सुख

खणमेत्त सोक्खा बहु काल दुक्खा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1187]

— ***उत्तराध्ययन 14/13***

संसार के विषयभोग क्षणभर के लिए सुख देते हैं, किन्तु बदले में चिरकाल तक दुःखदायी होते हैं ।

239 धर्मधुरा

धणेण किं धम्म धुराधिगारे ?

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1188]

— ***उत्तराध्ययन 14/17***

धर्म की धुरा को खींचने के लिए धन की क्या आवश्यकता है ? (वहाँ तो सदाचार की जरूरत है।)

240 संसार-हेतु

संसार हेउं च वयंति बंधं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1189]

— ***उत्तराध्ययन - 14/19***

यह बन्धन ही संसार का हेतु है।

241 निष्फल रात्रियाँ

अधम्मं कुणमाणस्स अफला जंति राइओ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1189]

— ***उत्तराध्ययन 14/24***

अधर्माचरण करनेवालों की रात्रियाँ निष्फल जा रही हैं।

242 नित्य क्या ?

नो इंदियग्गेज्झा अमुत्त भावा ।
अमुत्त भावा विय होइ निच्चो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1189]

— ***उत्तराध्ययन 14/19***

आत्मा आदि अमूर्त तत्त्व इन्द्रिय ग्राह्य नहीं होते और जो अमूर्त होते हैं, वे नित्य भी होते हैं।

243 बंध-हेतु

अज्झत्थ हेउं निययऽस्स बंधो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1189]

— *उत्तराध्ययन 14/19*

अन्दर के विकार ही वस्तुत: बन्धन के हेतु हैं ।

244 जरा-मरण

मच्चुणाब्भाहओ लोगो, जराए परिवारिओ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1189]

— *उत्तराध्ययन 14/23*

जरा से घिरा हुआ यह संसार मृत्यु से पीड़ित हो रहा है अर्थात् यह संसार मृत्यु से पीड़ित है और वृद्धावस्था से घिरा हुआ है ।

245 बीता कभी नहीं लौटा

जा जा वच्चइ रयणी ण सा पडिनियत्तई ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1189]

— *उत्तराध्ययन 14/24*

जो जो रात बीत रही है, वह लौटकर नहीं आती ।

246 सफल रजनी

धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जंति राइओ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1189]

— *उत्तराध्ययन 14/25*

धर्माचरण करनेवालों की रात्रियाँ सफल होती हैं ।

247 राग-मुक्ति कैसे ?

सद्धा खमं णे विणइत्तु रागं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1190]

— *उत्तराध्ययन 14/28*

धर्मश्रद्धा राग को दूर करने में समर्थ हो सकती हैं ।

248 कल का क्या भरोसा ?

जस्सऽत्थि मच्चुणा सक्खं, जस्स चऽत्थि पलायणं ।
जो जाणइ न मरिस्सामि, सो हु कंखे सुए सिया ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1190]

— ***उत्तराध्ययन 14/27***

जिसकी मृत्यु के साथ मित्रता हो, जो उससे कहीं भागकर बच सकता हो अथवा जो यह जानता हो कि मैं कभी मरूँगा ही नहीं, वही कल पर भरोसा कर सकता है ।

249 स्थाणु

साहाहिं रूक्खो लभई समाहिं ।
छिन्नाहिं साहाहिं तमेण खाणुं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1190]

— ***उत्तराध्ययन 14/29***

वृक्ष की सुन्दरता शाखाओं से हैं । शाखाएँ कट जाने पर वही वृक्ष ठूंठ (स्थाणु) कहलाता है ।

250 भिक्षाचर्या

धीरा हु भिक्खायरियं चरंति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1191]

— ***उत्तराध्ययन - 14/35***

धैर्यशाली ही भिक्षा-चर्या का अनुसरण करते हैं ।

251 असमर्थ

जुन्नो व हंसो पडिसोयगामी ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1191]

— ***उत्तराध्ययन 14/33***

वृद्ध हंस प्रतिस्रोत (जल-प्रवाह के सम्मुख) में तैरने से डूब जाता है । (असमर्थ व्यक्ति समर्थ का प्रतिरोध नहीं कर सकता ।)

252 धन-से रक्षा नहीं

सव्वं जगं जइ तुहं, सव्वं वावि धण भवे ।
सव्वं पि ते अपज्जत्तं, नेव ताणाए तं तव ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1191]

— *उत्तराध्ययन 14/39*

यदि यह जगत् और इस जगत् का समग्र धन भी तुम्हें दे दिया जाय, तब भी वह तुम्हारी रक्षा करने में अपर्याप्त अर्थात् असमर्थ है ।

253 धर्म ही रक्षक

एक्को हु धम्मो नरदेव ! ताणं ।
न विज्जए अन्नमिहेह किंचि ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1191]
— *उत्तराध्ययन 14/40*

राजन् ! एक धर्म ही रक्षा करनेवाला है । उसके अतिरिक्त विश्व में कोई भी मनुष्य का त्राता नहीं है ।

254 मृत्यु अवश्यंभावी

जातस्य हि ध्रुवं मृत्युः

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1192]
— *भगवद्गीता - 2/27*

यह ध्रुव सत्य है कि जन्मधारी की मृत्यु अवश्यम्भावी है ।

255 दह्यमान-संसार

डज्झमाणं न बुज्झामो रागदोसग्गिणा जयं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1192]
— *उत्तराध्ययन - 14/43*

राग-द्वेष रूप अग्नि से जलते हुए इस संसार को देखकर भी हम नहीं समझ रहे हैं, यह आश्चर्य है ।

256 चलो, संभलकर

गिद्धोवमे उ नच्चाणं कामे संसार वद्धणे ।
उरगो सुवण्ण पासेव्व संकमाणो तणुं चरे ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1192]
— *उत्तराध्ययन 14/47*

संसार को बढ़ानेवाले काम-भागों को गिद्ध के समान जानकर उनसे वैसे ही शंकित होकर चलना चाहिए, जैसे सर्प गरुड़ के निकट डरता हुआ बहुत संभल कर चलता है ।

257 काम-भोग-दुस्त्याज्य

काम भोगे य दुच्चए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1193]

— ***उत्तराध्ययन 14/49***

काम-भोग कठिनाई से त्यागे जाते हैं ।

258 उत्सर्ग-अपवाद

जावइया उस्सग्गा तावइया चेव हुंति अववाया ।
जावइया अववाया, उस्सग्गा तत्तिया चेव ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1195]

— ***बृहत्कल्पभाष्य - 322***

जितने उपसर्ग (विधि-वचन) हैं उतने ही उनके अपवाद (निषेध-वचन) भी हैं; और जितने अपवाद हैं उतने ही उत्सर्ग भी हैं ।

259 अधिकरण-दोष

अतिरेगं अहिगरणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 2 पृ. 1209]

— ***ओघनिर्युक्ति - 741***

आवश्यकता से अधिक एवं अनुपयोगी उपकरण आदि रखना वास्तव में अधिकरण (दोषरूप एवं क्लेशप्रद) हैं ।

प्रथम
परिशिष्ट
अकारादि अनुक्रमणिका

अकारादि अनुक्रमणिका

[illegible]	सूक्ति	[illegible]	[illegible]
173	अविधूयर्राहि सुण्हाहिं धातीहिं अदुवदासीहिं । महतीहिं वा कुमारीहिं संथवं से णेव कुज्जा अणगारे ।	2	627
174	अन्नं मणेण चिंतेति अन्नं वायाइ कम्मुणा अन्नं । तम्हाण सद्दहे भिक्खू, बहुमायाओ इत्थिओ णच्चा ॥	2	628
185	अज्झोववन्ना कामेहिं पूयणा इव तरुणए ।	2	651
189	अणागयमपस्सन्ता, पच्चुप्पन्नगवेसगा । ते पच्छा परितप्पन्ति, झीणे आउम्मि जोव्वणे ॥	2	652
192	अदिण्णा दाणाइ वोसिरे ।	2	652
222	अहाकडं ण से सेवे ।	2	1082
228	अहिंसमाणो घासमेसित्था ।	2	1087
234	अण्णप्पमत्ते धणमेसमाणे, पप्पोति मच्चुं पुरिसे जरं च ।	2	1187
241	अधम्मं कुणमाणस्स अफला जंति राइओ ।	2	1189
243	अज्झत्थ हेउं नियय5स्स बंधो ।	2	1189
259	अतिरेगं अहिगरणं ।	2	1209
	आ		
28	आगमचक्खू साहू ।	2	90
30	आणाए मामगं धम्मं ।	2	131
34	आणं अइक्कमंते ते कापुरिसे न सप्पुरिसे ।	2	135
		2	335
35	आणाए च्चिय चरणं, तब्भंगे किं न भग्गं तु ।	2	137-138
36	आणा नो खंडेज्जा, आणाभंगे कुओ सुहं ?	2	138-141
37	आणा खंडणकरीय, सव्वंपि निरत्थयं तस्स । आणा रहिओ धम्मो, पलाल पुलुव्व पडिहाइ ॥	2	141
39	आतंकदंसी अहियंति णच्चा ।	2	174
40	आयंकदंसी न करेति पावं ।	2	175
59	आततो बहिया पास ।	2	186
76	आया हु महं नाणे, आया मे दंसणे चरित्ते य । आया पच्चक्खाणे आया मे संजमे जोगे ॥	2	231

[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
32	एगंतो मिच्छत्तं, जिणाण आणाय होइ णेगंतो ।	2	135
68	एगे आया ।	2	219
69	एस आतावादी समियाए परियाए वियाहिते ।	2	223
86	एगो वच्चइ जीवो, एगो चेवुव वज्जई ।		
	एगस्स होइ मरणं, एगो सिज्झइ नीरओ ॥	2	232
87	एगो मे सासओ अप्पा, नाणदंसणसंजुओ ।		
	सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे संजोग लक्खणा ॥	2	232
180	एवित्थियाहिं अणगारा, संवासेणणासमुवयंति ॥	2	629
208	एते संगा मणुस्साणं पाताला व अतारिमा ।	2	1051
253	एक्को हु धम्मो नरदेव ! ताणं !		
	न विज्जए अन्नमिहेह किंचि ॥	2	1191
	अं		
99	अंगाणं किं सारो ? आयारो ।	2	372
	क		
43	कडं च कज्जमाणं च आगमेस्सं पावगं ।		
	सव्वं तं णाणुजाणंति, आयगुत्ता जिइंदिया ॥	2	176
83	कर्म जीवश्च संश्लिष्टं सर्वदा क्षीरनीरवत् ।		
	विभिन्नीकुरुते योऽसौ मुनिहंसो विवेकवान् ॥	2	232
127	कषाया विषया योगाः प्रमादाविरती तथा ।		
	मिथ्यात्वमार्तरौद्रे चेत्यशुभं प्रति हेतवः ॥	2	503
201	कम्मसच्चा हु पाणिणो ।	2	883
	का		
26	का अरइ ! के आणंदे एत्थंपि उग्गहे चरे ।	2	60
257	काम भोगे य दुच्चए ।	2	1193
	की		
213	कीवा जत्थ य किससंति, नाय संगेहिं मुच्छिया ॥	2	1051

कु

13 कुसग्गे जह ओसबिंदुए, थोवं चिट्ठइ लंबमाणाए ।
एवं मणुयाणं जीवियं, समयं गोयम मा पमायए ॥ 2 11

91 कुल गाम नगर रज्जं, पयहियं जो तेसु कुणइ हु ममत्तं ।
सो नवरि लिंगधारी, संजम जोएण निस्सारो ॥ 2 334

ख

54 खणं जाणाहि पंडिए ! 2 179

238 खणमेत्त सोक्खा बहुकाल दुक्खा । 2 1187

खा

230 खाणी अणत्थाण उ काम-भोगा । 2 1187

गा

47 गात्रं संकुचितं गतिर्विगलिता, दन्ताश्च नाशं गता ।
दृष्टि र्भश्यति रूपमेवहसते वक्त्रं च लालायते ॥
वाक्यं नैव करोति बान्धवजनः पत्नी न शुश्रूयते ।
धिक्कष्टं जरयाऽभिभूतं पुरूषं पुत्रोऽप्यवज्ञायते ॥ 2 177

गि

145 गिरिमृत्स्नां धनं पश्यन् धावतीन्द्रियः मोहितः ।
अनादि निधनं ज्ञानं-धनं पार्श्वे न पश्यति ॥ 2 597

172 गिद्धा सत्ता कामेहिं । 2 627

256 गिद्धोवमे उ नच्चाणं कामे संसार वद्धणे ।
उरगो सुवण्ण पासेव्व संकमाणो तणुं चरे ॥ 2 1192

गु

56 गुरुत्वं स्वस्य नोदेति, शिक्षा सात्म्येन यावता ।
आत्म-तत्त्व प्रकाशेन, तावत्सेव्यो गुरुत्तमः ॥ 2 180

57 गुणैर्यदि न पूर्णोऽसि कृतमात्मप्रशंसया ।
गुणैरेवासि पूर्णश्चेत् कृतमात्मप्रशंसया ॥ 2 181

	च		
152	चरेज्ज अत्तगवेसए ।	2	615
	चि		
61	चित्तं तिकाल विसयं ।	2	193
	चे		
218	चेच्चा वित्तं च णायओ ।	2	1053
	छ		
121	छत्तीसगुणसम्पन्ना गण्णते णावि अवस्स कायव्वा । परसक्खिया विसोही, सुट्ठुवि ववहार कुसलेण ॥ जह कुसलो वि वेज्जो, अन्नस्स कहेइ अत्तणो वाही । विज्जस्स य सोयंतो, पडिकम्मं समारभतो ॥	2	450
134	छहिं ठाणेहिं समणे निग्गंथे आहारं वोच्छिदमाणे णाइक्कमइ तंजहा– आयंके उवसग्गे तितिक्खया बंभचेरगुत्तीसु । पाणिदया तवहेउं, सरीरवोच्छेयणट्ठाए ॥	2	548
	ज		
11	जह तुब्भे तह अम्हे, तुम्हे विय होहिहा जहा अम्हे । अप्पाहेति पडंतं पंडुय–पत्तं किसलयाणं ॥	2	11
90	जत्थ आभिणिबोहियणाणं, तत्थ सुयनाणं । जत्थ सुअनाणं, तत्थाऽऽभिणिबोहियंणाणं ॥	2	279
97	जह दीवो दीवसयं पइप्पए दीप्पइ य । सो दीव समा आयरिआ, अप्पं च परं च दीवंति ॥	2	337
117	जह बालो जंपंतो कज्जमकज्जं व उज्जयं भणइ । तं तह आलोएज्जा मायामय विप्पमुक्को उ ॥	2	428-431
130	जहा से दीवे असंदीणो एवं से भवति सरणं महामुणी ।	2	512
162	जल मज्झे मच्छपयं, अगासे पक्खियाण पयपंती । महिलाण हिययमग्गो, तिन्नवि लोए न दीसंति ॥	2	618
176	जतुकुंभे जहा उवज्जोती संवासे विदु विसीएज्जा ।	2	629

[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
186	जहा नदी वेयरणी, दुत्तरा इह संमता । एवं लोगंसि नारीओ, दुत्तरा अमतीमता ॥	2	652
202	जहा कुसग्गे उदगं समुद्देण समं मिणे । एवं माणुस्सगा कामा, देवकामाण अन्तिए ॥	2	883
210	जहा रूक्खं वणे जायं मालुया पडिबंधति । एवं णं पडिबंधंति, णातओ असमाहिणा ॥	2	1051
220	जहा खलु मइलं वत्थं, सुज्झइ उदगाइएहिं दव्वेहिं । एवं भावुवहाणे-ण सुज्झाए कम्ममट्ठविहं ॥	2	1076
248	जस्सऽत्थि मच्चुणा सक्खं, जस्स चऽत्थिपलायणं । जो जाणइ न मरिस्सामि, सो हु कंखे सुए सिया ॥	2	1190
	जा		
17	जाए सद्धाए णिक्खंतो तमेव अणुपालिया विजहित्ता विसोत्तियं ।	2	28
231	जाया य पुत्ता न भवंति ताणं ।	2	1187
245	जा जा वच्चइ रयणी ण सा पडिनियत्तई ।	2	1189
254	जातस्य हि ध्रुवं मृत्युः	2	1192
258	जावइया उस्सग्गा तावइया चेव हुंति अववाया । जावइया अववाया, उस्सग्गा तत्तिया चेव ।	2	1195
	जी		
96	जीहाए विलिहंतो, न भद्दओ सारणा जहिं नत्थि । दण्डेण वि ताडंतो, स भद्दओ सारणा जत्थ ।	2	337
211	जीवितं नाहिकंखेज्जा, सोच्चा धम्म अणुत्तरं ।	2	1051
	जु		
251	जुन्नो व हंसो पडिसोयगामी ।	2	1191
	जे		
63	जे लोगं अब्भाइक्खति से अत्ताणं अब्भाइक्खति । जे अत्ताणं अब्भाइक्खति, से लोगं अब्भाइक्खति ॥	2	195

[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
70	जेण विजाणति से आता तं पडुच्च पडिसंखाए।	2	223
72	जे आता से विण्णाता, जे विण्णाता से आता।	2	223
106	जे ते अप्पमत्त संजता ते णं नो आयारंभा नो परारम्भा, जाव आणारम्भा।	2	392
187	जेहिं काले परिक्कंत्तं, न पच्छा परितप्पए।	2	652
188	जेहिं नारीण संजोगा, पूयणापिट्ठतो कता। सव्वमेयं निरा किच्चा, ते ठिता सुसमाहिए॥	2	652
	जं		
24	जं किंचु वक्कमजाणे आउखेमस्समप्पणो तस्सेव अन्तरद्धाए, खिप्पं सिक्खिज्ज पंडिए।	2	23
50	जंजं करेइ तं तं न सोहए जोव्वणे अतिक्कंते। पुरिसस्स महिलियाए, एक्कं धम्मं पमुत्तूणं॥	2	178
	ज्व		
132	ज्वरादौ लङ्घनं हितं।	2	548
	ड		
255	डज्झमाणं न बुज्झामो रागदोसग्गिणा जयं।	2	1192
	ण		
7	ण एत्थ तवो वा दमो वा णियमो वा दिस्सति।	2	10
	णा		
1	णा इच्चो उदेति ण अत्थमेति।	2	3
45	णालं ते तव ताणाए वा सरणाए वा तुमं पि तेसिं णालं ताणाए वा सरणाए वा।	2	177-178-179
71	णाणे पुण नियमं आया।	2	223
226	णाणु गिद्धे रसेसु अपडिवण्णे।	2	1083
	णि		
67	णिच्चो अविणासी सासओ जीवो।	2	210
224	णिद्दं पि णो पगामए।	2	1083

	णी		
178	णीवारमेय बुज्झेज्जा ।	2	629
	णो		
114	णो सुलभा सुगई वि पेच्चओ ।	2	398
170	णो विहरे सहणमित्थीसु	2	626
216	णो विय पूयण पत्थए सिया ।	2	1053
227	णोवि य कंडुयए मुणी गातं ।	2	1083
	त		
2	तपसो निर्जराफलं दृष्टम्	2	8
4	तस्मात् कल्याणानां सर्वेषां भाजनं विनयः ।	2	8
80	तरङ्गतरलांलक्ष्मी–मायुर्वायुवदस्थिरम् । अदभ्रधीरनु ध्यायेदभ्रवद्भङ्गुरं वपुः ॥	2	232
102	तसे पाणे न हिंसेज्जा ।	2	387
103	तव चिमं जोगयं च, सज्झायजोगं च सया अहिट्ठिए । सूरे व सेणाए समत्तमाउहे, अलमप्पणो होइ अलं परेसिं ॥	2	387
169	तम्हाउ वज्जए इत्थी, विसलित्तं च कंटगंणच्चा ।	2	626
214	तत्थ मंदा विसीयंति, उज्जाणं सिव दुब्बला ।	2	1052
215	तत्थ मंदा विसीयंति उज्जाणंसि जरग्गवा ।	2	1052
	ता		
141	तावद् गर्जति खद्योतस्तावद् गर्जति चन्द्रमाः । उदिते ते सहस्रांशौ न, खद्योतो न चन्द्रमाः ॥	2	572
	ति		
33	तित्थयर समो सूरी ।	2	135
	तु		
150	तुल्लेवि इंदियत्थे, एगो सज्जइ विरज्जइ एगो । अब्भत्थं तु पमाणं, न इंदियत्था जिणावेंति ॥	2	598

[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
	तं		
20	तं से अहियाए तं से अबोहियाए ।	2	30
212	तं च भिक्खू परिण्णाय सव्वे संगा महासवा ।	2	1051
	द		
195	दव्वुज्जोउ जोओ पगासई परमियम्मि खित्तम्मि । भावुज्जोउ जो ओ लोगालोगं पगासेइ ॥	2	772
	दु		
112	दुहाओ छित्ता नेयाइ ।	2	393
196	दुर्गतिप्रसृतान् जन्तून् यस्माद्धारयत्ते पुनः । धत्ते चैतान् शुभे स्थाने, तस्माद्धर्म इति स्मृतः ॥	2	773
	दे		
77	देहात्माद्यविवेकोऽयं, सर्वदा सुलभो भवे । भव कोट्यादि तद्भेद, विवेकस्त्वति दुर्लभः ॥	2	232
	ध		
15	धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ ।	2	28
165	धम्मम्मि जो दढमइ, सो सूरो सति ओ य वीरो य । णहु धम्मणिरुस्साहो, पुरिसो सूरो सुवलिओ य ॥	2	624
239	धणेण किं धम्म धुराधिगारे ?	2	1188
246	धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जंति राइओ ॥	2	1189
	धि		
138	धितिमं विमुक्केण य पूयणट्ठी ; न सिलोयगामी य परिव्वएज्जा ।	2	550
	धी		
190	धीरा बंधणुम्मुका ।	2	652
203	धीरस्स परस्स धीरत्तं, सव्व धम्माणुवत्तिणो ।	2	884
250	धीरा हु भिक्खायरियं चरंति ।	2	1191

न

नि

नो

प

पा

पि

46 पिता रक्षति कौमारे-भर्ता रक्षति यौवने ।
पुत्राश्च स्थाविरे भावे, न स्त्री स्वातन्त्रमर्हति ॥ 2 177

पु

144 पुरः पुरः स्फुर तृष्णा, मृग तृष्णाऽनुकारिषु ।
इन्द्रियार्थेषु धावन्ति, त्यक्त्वा ज्ञानाऽमृतं जडाः ॥ 2 597

153 पुव्वं दण्डा पच्छा फासा, पुव्वं फासा पच्छा दंडा । 2 616

181 पुत्रश्च मूर्खो विधवा च कन्या,
शठं मित्रं चपलं कलत्रम् ।
विलासकालेऽपि दरिद्रता च
विनाग्निना पञ्चदहन्ति देहम् ॥ 2 636

पं

151 पंकभूयाउ इत्थिओ । 2 615

223 पंथपेही चरे जयमाणे । 2 1083

प्र

48 प्रथमे वयसि नाधीतं, द्वितीये नार्जितं धनम् ।
तृतीये न तपस्तपं, चतुर्थे किं करिष्यति ॥ 2 177

ब

108 बहुंपि लद्धुं ण णिहे । 2 393

120 बत्तीसं किर कवलो, आहारो कुच्छिपूरओ भणिओ ।
पुरिसस्स महिलाए, अट्ठावीसं भवे कवला ॥ 2 449

166 बलवानिन्द्रयग्रामो विद्वांसमि कर्षति ।
(पंडितोप्यऽत्रमुह्यति) 2 625

175 बहुमायाओ इत्थिओ । 2 628

179 बद्धेय विसयपासेहिं मोहमागच्छती पुणो मंदे । 2 629

बा

60 बाह्यात्मा चान्तरात्मा च परमात्मेति त्रय : ।
कायाधिष्ठायक ध्येयाः, प्रसिद्धा योगवाङ्मये ॥ 2 188

क्रमांक	सूक्ति	भाग	पृष्ठ
129	बाल-स्त्री-मूढ-मूर्खाणां, नृणां चारित्रकाङ्क्षिणाम् । अनुग्रहार्थं तत्त्वज्ञैः, सिद्धान्तः प्राकृतः कृतः ॥	2	512
177	बालस्स मंदयं बितियं जं च कडं अवजाणई भुज्जो । दुगुणं करेइ से पावं, पूयण कामए विसण्णेसी ॥	2	629
	बि		
148	बिभेषि यदि संसारान् मोक्ष-प्राप्तिं च काङ्क्षसि । तदेन्द्रिय जयं कर्तुं स्फार पौरूषम् ॥	2	597
	भ		
10	भवकोटिभिरसुलभ, मानुष्यं प्राप्य कः प्रमादो मे । न च गतमायुर्भूयः, प्रेत्यत्यपि देवराजस्य	2	11
31	भट्ठायारो सूरी ! भट्ठायाराणुवेक्खओ सूरी । उम्मग्गट्ठिओ सूरी तिण्णिविमग्गं पणासंति ॥	2	135 335/336
	म		
206	मज्जं दुग्गइमूलं हिरि सिरि मइ धम्म नासकरं ।	2	928
244	मच्चुणाब्भाहओ लोगो, जराए परिवारिओ ।	2	1189
	मा		
167	मात्रा स्वस्रा दुहित्रावा न विविक्तासनो भवेत् ।	2	625
200	माणुसत्तं भवे मूलं, लाभो देवगई भवे । मूलच्छेदेण जीवाणं,नरगतिरिक्खत्तणं धुवं ॥	2	882
225	मातण्णे असणपाणस्स ।	2	1083
	मि		
119	मित्ति मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झ ण केणइ ।	2	432
	मु		
191	मुसावयं विवज्जेज्जा ।	2	652

	मे		
98	मेढी आलंबणं खंभं दिट्ठि जाण सुउत्तमं । सूरी जं होइ गच्छस्स, तम्हा तं तु परिक्खए ॥	2	348
	मै		
124	मैत्र्यादिवासितं चेतः, कर्म स्यूते शुभात्मकं । कषायविषयाक्रान्तं, वितनोत्यशुभं मनः ॥	2	503
	मो		
219	मोह जंति नरा असंवुडा ।	2	1053
	मं		
229	मंद परिक्कमे ।	2	1087
	य		
78	य स्नात्वा समताकुण्डे, हित्वा कश्मलजं मलम् । पुनर्न याति मालिन्यं, सोऽन्तरात्मा परः शुचि ॥	2	232
82	य पश्येन्नित्यमात्मानमनित्यं पर सङ्गमम् । छलं लब्धुं न शक्नोति, तस्य मोहमलिम्लुचः ॥	2	232
85	यथा योधैः कृतं युद्धं स्वामिन्येवोपचर्यते । शुद्धात्मन्य विवेकेन, कर्म स्कन्धोर्जितं तथा ॥	2	232
164	यदि स्थिरा भवेत् विद्युत्, तिष्ठन्ति यदि वायवः । दैवात्तथापि नारीणां, न स्थेम्ना स्थीयते मनः ॥	2	618
	ल		
111	लद्धे आहारे अणगारे मातं जाणेज्जा ।	2	393
	ला		
109	लाभोत्ति ण मज्जेज्जा ।	2	393
	लो		
19	लोगं च आणाए अभिसमेच्चा अकुतोभयं ।	2	29
	व		
51	वओ अच्चेति जोव्वणं च ।	2	178

वा

171	वाया वीरियं कुसीलाणं ।	2	627
183	वाउ व जालमच्चेति, पिया लोगंसि इत्थिओ ।	2	641

वि

3	विणया णाणं, णाणाउ दंसणं दंसणाहिं चरणं तु । चरणाहिं तो मोक्खो मुक्खे सुक्खं अणाबाहं ॥	2	8
6	विनयफलं शुश्रूषा, शुश्रूषाफलं ज्ञानं । ज्ञानस्य फलं विरति, विरति फलं चास्रव निरोधः ॥ संवरफलं तपोबलमथ, तपसो निर्जरा फलं दृष्टम् । तस्मात्क्रिया निवृत्तिः क्रिया निवृत्तेरयोगित्वम् ॥ योगनिरोधाद् भवसन्ततिक्षयः सन्ततिक्षयान्मोक्षः । तस्मात् कल्याणानां सर्वेषां भाजनं विनयः ॥	2	8
38	विहडइ विद्धंसइ ते सरीरयं, समयं गोयम ! मा पमायए ।	2	174
92	विहिणा जो उ चोएइ, सुत्तं अत्थं च गाहई । सो धन्नो सो अ पुण्णो अ, सबंधू मुक्खदायगो ॥	2	334
131	विषया विनिवर्तन्ते, निराहारस्य देहिनः । रसवर्ज रसाऽप्येवं, परं दृष्टवा निवर्तते ॥	2	548
205	विवेकः संयमोज्ञानं, सत्यं शौचं दया क्षमा । मद्यात् प्रलीयते सर्वं, तृण्या वह्निकणादिव ॥	2	928

वी

65	वीरभोग्या वसुन्धरा ।	2	207

वृ

147	वृद्धास्तृष्णाजलाऽपूर्णे रालवालैः किलेन्द्रियः । मूर्च्छामतूच्छां यच्छन्ति, विकार विषपादपाः ॥	2	597

वे

237	वेया अधीया ण भवंति ताणं ॥	2	187

श

126 शरीरेण सुगुप्त शरीरी चिनुते शुभम् ।
सततारम्भिणा जन्तुघातफेना शुभं पुनः ॥ 2 503

शु

84 शुचीन्यप्य शुचीकर्तुं समर्थेऽशुचिसंभवे ।
देहे जलादिना शौचं भ्रमो मूढस्य दारूणः ॥ 2 232

125 शुभार्जनाय निर्मिथ्यं श्रुतज्ञानाश्रितं वचः ।
विपरीतं पुनर्ज्ञेयमशुभार्जनहेतवे ॥ 2 503

स

8 सव्वेसिं जीवितं पियं । 2 10

9 सव्वे पाणा पियाउया सुहसाता दुक्ख पडिकूला
अप्पियवधा पियजीविणो जीवितुकामा । 2 10

12 समयं गोयम ! मा पमायए । 2 11

58 सव्वत्थेसु विमुत्तो, साहू सव्वत्थ होइ अप्पवसो । 2 185

93 स एव भव्वसत्ताणं, चक्खुभूए वियाहिए ।
दंसेइ जो जिणुद्दिट्ठं, अणुट्ठाणं जहाट्ठियं ॥ 2 335

101 सज्झाय सज्झाण रयस्स, ताइणो, अपावभावस्सतवेरयस्स
विसुज्झइ जं से मलं पुरे कडं, समीरियं रूप्पमलं व जोइणा ॥
2 387

123 समणेण सावण्ण य अवस्स कायव्व हवति जम्हा ।
अंतो अहो निसिस्स उ तम्हा आवस्सयं नाम ॥ 2 472

149 सरित्सहस्रदुष्पूर समुद्रोदर सोदरः ।
तृप्तिमानेन्द्रियग्रामो, भव तृप्तोऽन्तरात्मना ॥ 2 597

247 सद्धाखमं णे विणइत्तु रागं । 2 1190

252 सव्वं जगं जइ तुहं, सव्वं वावि धण भवे ।
सव्वं पि ते अपज्जत्तं, नेव ताणाए तं तव ॥ 2 1191

क्रमांक	सूक्ति	भाग	पृष्ठ
	सा		
100	सारो परूवणाए चरणं तस्स विय होइ निव्वाणं।	2	372
115	सालंबणो पडंतो, अप्पाणं दुग्गमेऽवि धारेइ। इय सालंबणसेवा, धारेइ जइं असढभावं॥	2	421
116	सालंबसेवी समुवेति मोक्खं।	2	421
249	साहाहिं रूक्खो लभई समाहिं। छिन्नाहिं साहाहिं तमेण खाणुं॥	2	1190
	सी		
168	सीहं जहा च कुणिमेणं निब्भयमेग चरं पासेणं।	2	626
209	सीयंति अबुहा।	2	1051
	सु		
66	सुहदुक्ख संपओगो, न विज्जई निच्चवाय पक्खंमि। एगंतच्छेअंमि अ, सुहदुक्ख विगप्पणमजुत्तं॥	2	210
74	सुरक्खिओ सव्व दुहाण मुच्चइ।	2	231
137	सुद्धे सिया जाए न दूसएज्जा।	2	550
193	सुव्वते समिते चरे।	2	652
	सू		
207	सूरं मन्नति अप्पाणं जाव जेतं न पस्सति।	2	1050
	से		
16	से जहावि अणगारे उज्जुकडे नियाग पडिवण्णे अमायं कुव्वमाणे वियाहिते।	2	28
22	सेणे जह वट्टयं हरे।	2	32
49	से ण हासाए ण किड्डाए ण रतीए ण विभूसाए।	2	177
104	से तारिसे दुक्खसहे जिइंदिए, सुएण जुत्ते अममे-अकिंचणे। विरायइ कम्म घणम्मि अवगए, कसिणब्भपुडावगमेव चंदिमित्ति॥	2	387
161	से पभूयदंसी.... सदा जते दट्ठुं विप्पडिवेदेति अप्पाणं किमेस जणो करिस्सति ?	2	616

सो

14	सोही उज्जुय भूयस्स।	2	28
221	सोवधिए हु लुप्पती बाले।	2	1082

सं

88	संयमाऽस्त्रं विवेकेन, शाणेनोत्तेजितं मुनेः। धृति धारोल्बणं कर्म, शत्रुच्छेदक्षमं भवेत्॥	2	233
95	संगहोवग्गहं विहिणा न करेइ य जो गणी। समणं समणिं तु दिक्खित्ता समायारिं न गाहए॥ बालाणं जो उ सीसाणं, जीहाए उवलिंपए। तं सम्ममग्गं गाहेइ, सो सूरी जाण वेरिओ॥	2	337
236	संसार मोक्खस्स विवक्खभूया।	2	1187
240	संसार हेउं च वयंति बंधं।	2	1189

ह

194	हस्तस्पर्श समं शास्त्रं तत एव कथञ्चन। अत्र तन्निश्चयोपिस्यात् तथा चन्द्रोपरागवत्॥	2	671

क्षी

143	क्षीरे घृतं तिले तैलं काष्ठेऽग्निः सौरभं सुमे। चन्द्रकान्ते सुधा यद्वत् तथात्माप्यङ्गतः पृथक्॥	2	573

ज्ञा

5	ज्ञानस्य फलं विरति।	2	8

द्वितीय परिशिष्ट
विषयानुक्रमणिका

विषयानुक्रमणिका

31	232	अल्पसुखदायी
32	251	असमर्थ
33	259	अधिकरण दोष
34	10	आत्म-चिंतन
35	21	आरंभ
36	28	आगम चक्षु
37	30	आज्ञा-धर्म
38	33	आचार्य-तीर्थंकर
39	35	आज्ञा
40	36	आज्ञोल्लंघन
41	37	आज्ञा-खण्डित धर्म
42	40	आतङ्कदर्शी
43	43	आत्म-गुप्त जितेन्द्रिय
44	55	आत्मज्ञाता
45	59	आत्मदृष्टि
46	63	आत्म अपलाप
47	70	आत्म-प्रतीति
48	72	आत्म-विज्ञाता
49	82	आत्मद्रष्टा से मोह - चोर दूर
50	92	आचार्य भ.-उत्तरदायित्व
51	94	आचार्य गोपाल तुल्य
52	100	आचरण से निर्वाण
53	109	आहार की अनासक्ति
54	113	आरम्भ-निवृत्ति
55	115	आलम्बन
56	121	आलोचना : पर-साक्षी
57	122	आलोचना से ऋजुता
58	134	आहार-त्याग किसलिए ?
59	143	आत्मा शरीर से भिन्न
60	152	आत्मान्वेषक
61	158	आकृष्ट मन का त्याग
62	218	आत्म-निग्रह

129	26	निष्काम ज्ञानी
130	66	नित्यानित्यवाद
131	67	नित्यात्मा
132	76	निश्चय-रत्नत्रय
133	91	निःसार संयमी
134	105	निष्काम आचार
135	224	निद्रा
136	233	निरन्तर भटकाव
137	241	निष्फल रात्रियाँ
138	242	नित्य क्या ?
139	7	परिग्रह जन्य दोष
140	12	पल-पल अप्रमाद
141	110	परिग्रह से दूर
142	51	पानी केरा बुल-बुला
143	75	पाप से बचाव
144	189	पीछे पछताये होत क्या ?
145	93	पुरःस्पर्शी पारदर्शी
146	120	प्रमाणोपेत-आहार
147	150	प्रमाणभूत अन्तर
148	161	प्रभूतज्ञानी का पर्यालोचन
149	178	प्रलोभन
150	235	प्रमाद मत करो
151	245	बीता कभी नहीं लौटा
152	190	बंधन-मुक्त
153	243	बंध-हेतु
154	182	ब्रह्मचर्य गरिमा
155	183	ब्रह्मचर्य
156	226	भिक्षु अलोलुप
157	250	भिक्षाचर्या
158	133	भूख-वेदना
159	172	भोगासक्त-प्राणी
160	41	मनुष्यायु-अल्प भी
161	90	मति-श्रुत अन्योन्याश्रित

[illegible]	[illegible]	[illegible]
195	77	विवेक-दुर्लभ
196	116	विशिष्ट ज्ञान
197	119	विश्व-मैत्री
198	144	विषय-दौड़
199	147	विकारः विषवृक्ष
200	159	विचरण
201	169	विष कण्टक
202	65	वीर भोग्या
203	45	शरणदाता नहीं
204	95	शत्रु-गुरु
205	87	शाश्वत तत्त्व
206	194	शास्त्र
207	124	शुभाशुभ कर्म सञ्चय
208	126	शुभाशुभ कर्म उपार्जन
209	237	शुक-विद्या
210	107	शोक नहीं
211	6	सर्वकल्याण का मूल:विनय
212	14	सरलात्मा
213	38	समय मूल्यवान्
214	54	समय पहचानो
215	58	सर्व-मुक्त
216	69	समता का पारगामी
217	78	समता-कुण्ड-स्नान
218	86	सदा अकेला
219	125	सत्यासत्य वचन
220	136	समाधिकामी निरपेक्ष
221	187	समयबद्ध
222	188	सर्वविघ्नजयी
223	246	सफल रजनी
224	39	साधनाशील
225	137	साधक परिशुद्ध
226	74	सुरक्षितात्मा
227	193	सुव्रती

228	1	सूर्योदयास्त भ्रान्ति
229	88	संयमास्त्र
230	108	संग्रहवृत्ति-त्याग
231	135	संसार-वलय से मुक्ति
232	138	संयम-पराक्रम
233	240	संसार-हेतु
234	123	सांध्य-आवश्यक
235	249	स्थाणु
236	210	स्नेह-एक बन्धन
237	208	स्नेह-त्याग-दुष्कर
238	103	स्व-पर-रक्षक
239	216	स्व-प्रतिष्ठा से बचो
240	101	स्वाध्याय-तप-निर्मल
241	170	स्त्री के साथ विहार निषेध
242	173	स्त्री परिचय निषिद्ध
243	176	स्त्री-संसर्ग
244	180	स्त्री-संसर्ग-त्याग
245	153	स्त्री-संसर्ग-दुःख
246	184	स्त्रीवशी-अज्ञ
247	20	हिंसा अहितकारिणी
248	198	हिंसा
249	13	क्षण भंगुर जीवन
250	238	क्षणिक-सुख
251	211	श्रेष्ठ धर्म
252	102	त्रस हिंसा निषेध
253	60	त्रिविध आत्मा
254	142	त्रिपदी
255	5	ज्ञान का फल
256	71	ज्ञानात्मा
257	97	ज्ञान ज्योतिष्मान्
258	195	ज्ञान ज्योति
259	212	ज्ञाति स्नेह बंधन

● ● ●

तृतीय
परिशिष्ट
अभिधान राजेन्द्रः
पृष्ठ संख्या
अनुक्रमणिका
भाग-२

अभिधान राजेन्द्रः पृष्ठ संख्या अनुक्रमणिका

सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या	[illegible]
1	3	
2	8	एवं भाग 6 पृ. 337 में भी है।
3	8	एवं भाग 6 पृ. 337 में भी है।
4	8	एवं भाग 6 पृ. 337 में भी है।
5	8	एवं भाग 6 पृ. 337 में भी है।
6	8	एवं भाग 6 पृ. 337 में भी है।
7	10	एवं भाग 6 पृ. 730 में भी है।
8	10	
9	10	
10	11	एवं भाग 4 पृ. 2677 में भी है।
11	11	
12	11	
13	11	एवं भाग 4 पृ. 2569 में भी है।
14	28	एवं भाग 3 पृ. 1053 में भी है।
15	28	एवं भाग 3 पृ. 1053 में भी है।
16	28	
17	28	
18	29	
19	29	एवं भाग 7 पृ. 893 में भी है।
20	30	एवं भाग 4 पृ. 2346 में भी है।
21	30	एवं भाग 6 पृ. 1062 तथा भाग 4 पृ. 234 में भी है।
22	32	
23	32	
24	33	एवं भाग 6 पृ. 131 में भी है।
25	59	
26	60	एवं भाग 7 पृ. 60 में भी है।
27	79	
28	90	
29	93	
30	131	

[illegible]	[illegible]	
31	135/335-336	
32	135	
33	135	एवं भाग 4 पृ. 2314 में भी है।
34	135 एवं 335	
35	137-138	
36	138-141	
37	141	
38	174	
39	174	एवं भाग 6 पृ. 1061 में भी है।
40	175	एवं भाग 5 पृ. 1316 में भी है।
41	176	
42	176	
43	176	
44	176	
45	177-178-179	
46	177	
47	177	
48	177	
49	177	
50	178	
51	178	
52	178	
53	179	
54	179	
55	180	एवं भाग 3 पृ. 559 में भी है।
56	180	एवं भाग 3 पृ. 1171 में भी है।
57	181	
58	185	
59	186	
60	188	
61	193	
62	195	

[illegible]	[illegible]	[illegible]
63	195	एवं भाग 4 पृ. 344 में भी है।
64	205	
65	207	
66	210	
67	210	
68	219	
69	223	
70	223	
71	223	
72	223	
73	231	
74	231	
75	231	
76	231	
77	232	
78	232	
79	232	
80	232	
81	232	
82	232	
83	232	
84	232	
85	232	
86	232	
87	232	एवं भाग 6 पृ. 457 में भी है।
88	233	
89	278	
90	279	
91	334	
92	334	
93	335	
94	337	

[illegible]	[illegible]	[illegible]
95	337	
96	337	
97	337	
98	348	
99	372	
100	372	
101	387	
102	387	
103	387	
104	387	
105	389	
106	392	
107	393	
108	393	
109	393	
110	393	एवं भाग 4 पृ. 2737 में भी है।
111	393	
112	393	
113	398	
114	398	
115	421	
116	421	एवं भाग 7 पृ. 778 में भी है।
117	428-431	
118	432	
119	432	एवं भाग 5 पृ. 317 में भी है।
120	449	
121	450	
122	465	
123	472	
124	503	
125	503	
126	503	

[illegible]	[illegible]	[illegible]
127	503	
128	512	
129	512	
130	512	
131	548	
132	548	
133	548	
134	548	
135	550	
136	550	
137	550	
138	550	
139	554	
140	559	
141	572	
142	573	
143	573	
144	597	
145	597	
146	597	
147	597	
148	597	
149	597	
150	598	
151	615	
152	615	
153	616	
154	616	
155	616	
156	616	
157	616	
158	616	
159	616	
160	616	

161	616
162	618
163	618
164	618
165	624
166	625
167	625
168	626
169	626
170	626
171	627
172	627
173	627
174	628
175	628
176	629
177	629
178	629
179	629
180	629
181	636
182	641
183	641
184	651
185	651
186	652
187	652
188	652
189	652
190	652
191	652
192	652
193	652
194	671

[illegible]	[illegible]	[illegible]
195	772	
196	773	एवं भाग 4 पृ. 2665 में भी है।
197	797	
198	797	
199	881	
200	882	
201	883	
202	883	
203	884	
204	887	
205	928	
206	928	
207	1050	
208	1051	
209	1051	
210	1051	
211	1051	
212	1051	
213	1051	
214	1052	
215	1052	
216	1053	
217	1053	
218	1053	
219	1053	
220	1076	
221	1082	
222	1082	
223	1083	
224	1083	
225	1083	
226	1083	
227	1083	

[illegible]	[illegible]
228	1087
229	1087
230	1187
231	1187
232	1187
233	1187
234	1187
235	1187
236	1187
237	1187
238	1187
239	1188
240	1189
241	1189
242	1189
243	1189
244	1189
245	1189
246	1189
247	1190
248	1190
249	1190
250	1191
251	1191
252	1191
253	1191
254	1192
255	1192
256	1192
257	1193
258	1195
259	1205

चतुर्थ
परिशिष्ट
जैन एवं जैनेतर ग्रन्थः
गाथा/श्लोकादि
अनुक्रमणिका

जैन एवं जैनेतर ग्रन्थः गाथा/श्लोकादि अनुक्रमणिका

अनुयोगद्वार सूत्र

सूक्ति कम	सूत्र	गाथा
123	29	3
11	146	121

आचारांग सूत्र

सूक्ति क्रम	प्रथम श्रुत.	अध्ययन	उद्देशक	सूत्र
64	1	1	1	1-3
20	1	1	2	13
21	1	1	2	14
16	1	1	3	19
17	1	1	3	20
18	1	1	3	21
63	1	1	3	22
39	1	1	7	56
41	1	2	1	64
42	1	2	1	64
45	1	2	1	64
49	1	2	1	64
51	1	2	1	65
53	1	2	1	68
54	1	2	1	68
7	1	2	3	77
8	1	2	3	78
9	1	2	3	78
112	1	2	5	88
107	1	2	5	89
108	1	2	5	89
109	1	2	5	89
110	1	2	5	89
111	1	2	5	89
40	1	3	2	115
59	1	3	3	122
25	1	3	3	124/11
26	1	3	3	124

[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
19	1	3	4	129
153	1	5	4	164
154	1	5	4	164
155	1	5	4	164
156	1	5	4	164
157	1	5	4	164
158	1	5	4	164
159	1	5	4	164
160	1	5	4	164
161	1	5	4	164
69	1	5	5	171
70	1	5	5	171
72	1	5	5	171
30	1	6	2	185
130	1	6	5	185
128	1	6	5	97
24	1	8	8	—
221	1	9	1	55
222	1	9	1	58
225	1	9	1	60
226	1	9	1	60
227	1	9	1	60
223	1	9	1	61
224	1	9	2	68
228	1	9	4	105
229	1	9	4	105

आचारांग निर्युक्ति

सूक्ति नं.	गाथा
99	16
100	17
220	282

आचारांग सूत्र सटीक

सूक्ति क्रम	प्रथम श्रुत.	अध्ययन	उद्देशक	सूत्र
65	1	1	1	–
48	1	2	1	63
50	1	2	1	64
52	1	2	1	65

आतुर प्रत्याखान

सूक्ति नं.	गाथा
76	25
86	26
87	27

आवश्यक निर्युक्ति

सूक्ति नं.	अध्ययन	गाथा
195	2	1075
115	3	1186

आवश्यक मलयगिरि

सूक्ति नं	खण्ड	–
94	1	1
196	2	–

उत्तराध्ययन सूत्र

सूक्ति नं.	अध्ययन	गाथा
151	2	19
152	2	19
14	3	12
15	3	12
199	7	10
200	7	16
201	7	20
202	7	23
203	7	29
13	10	2
38	10	27
12	10	34
231	14	12
237	14	12
230	14	13
232	14	13
236	14	13
238	14	13
233	14	14
234	14	14
235	14	15
239	14	17
240	14	19

[illegible]	[illegible]	[illegible]
242	14	19
243	14	19
244	14	23
241	14	24
245	14	24
246	14	25
248	14	27
247	14	28
249	14	29
251	14	33
250	14	35
252	14	39
253	14	40
255	14	43
256	14	47
257	14	49
122	29	5
139	29	35

उत्तराध्ययन निर्युक्ति

सूक्ति नं.	गाथा
97	8

ओघ निर्युक्ति

सूक्ति क्रम	गाथा
259	741
121	794-795
117	801
118	806

ओघ निर्युक्ति भाष्य

सूक्ति क्रम	गाथा
133	290

कल्प सुबोधिका सटीक

सूक्ति नं.	क्षण	पृ.
141	2	–
143	–	254

गच्छाचार पयन्ना

सूक्ति नं.	[illegible]	[illegible]
98	1	8
95	1	15–16
96	1	17
91	1	24
92	1	25
93	1	26
31	1	28
58	2	68

गच्छाचार पयन्ना सटीक

सूक्ति नं.	अधिकार
162	2
163	2
164	2

चरक संहिता

सूक्ति नं.	प्रकरण
132	ज्वर प्रकरण

तित्थोगाली पयन्ना

सूक्ति नं.	गाथा
32	1213

दशवैकालिक सूत्र

सूक्ति क्रम	अध्ययन	उद्देशक	गाथा
102	8	–	12
103	8	–	62
101	8	–	63
104	8	–	64
105	9	4	5

दशवैकालिक चूलिका

सूक्ति नं.	चूलिका	गाथा
73	2	16
74	2	16
75	2	16

दशवैकालिक निर्युक्ति भाष्य

सूक्ति नं.	गाथा
61	19
62	34
67	42
66	60

द्वात्रिंशत् द्वात्रिंशिका

सूक्ति नं.	द्वा.	गाथा
60	20	17

धर्मसंग्रह सटीक

सूक्ति नं.	अधिकार	गाथा
206	2	72

धर्मरत्न प्रकरण सटीक

सूक्ति नं.	अधिकार	पृष्ठ
3	1	21

धर्म बिन्दु सटीक

सूक्ति नं.	अध्याय	सूत्र	श्लोक
129	2	69	[60]

नग्गय

सूक्ति कम	सूत्र
181	31

नंदीसूत्र

सूक्ति नं.	सूत्र
90	15

पिंड निर्युक्ति

सूक्ति नं.	गाथा
134	96
120	642

पंचतंत्र

सूक्ति नं.	अ.	श्लोक
47	2	194

प्रवचनसार

सूक्ति नं.	अध्ययन	गाथा
28	3	34

प्रशमरति-प्रकरण

सूक्ति नं.	श्लोक
10	64
5	72
2	73
4	74
6	72-73-74

बृहत्कल्प वृत्ति सभाष्य

सूक्ति नं.	उद्देश	गाथा
35	1	3

बृहत्कल्प भाष्य

सूक्ति नं.	गाथा
258	322

भगवती सूत्र

सूक्ति क्रम	शतक	उद्देशक	सूत्र
106	1	1	7(2)
71	12	10	10

भगवद्गीता

सूक्ति नं.	अध्याय	श्लोक
254	2	27
131	2	59

महानिशीथ सूत्र

सूक्ति नं.	अध्ययन	गाथा
119	1	59
33	5	101
34	5	101
36	5	120

मनुस्मृति

सूक्ति नं.	अध्ययन	श्लोक
166	2	215
167	2	215

योगबिन्दु

सूक्ति नं.	श्लोक
194	316

योगशास्त्र

सूक्ति नं.	प्रकाश	श्लोक
205	3	16
124	4	75
125	4	76
126	4	77
127	4	78

लोकतत्त्व निर्णय

सूक्ति नं.	श्लोक
89	38

व्यवहार भाष्य

सूक्ति नं.	उद्देश	गाथा
150	2	54
29	10	216

व्यवहार भाष्य पीठिका

सूक्ति नं.	गाथा
116	184

समवायांग सूत्र

सूक्ति नं.	समवाय	सूत्र
68	1	3

सूत्रकृतांग सूत्र

सूक्ति नं.	प्रथम श्रुत.	अध्ययन	उद्देशक	गाथा
44	1	1	1	16
22	1	2	1	2
113	1	2	1	3
114	1	2	1	3
219	1	2	1	20
217	1	2	1	21
218	1	2	1	22
140	1	2	2	1
216	1	2	2	16

207	1	3	1	1
210	1	3	2	10
208	1	3	2	12
213	1	3	2	12
211	1	3	2	13
212	1	3	2	13
209	1	3	2	14
214	1	3	2	20
215	1	3	2	21
184	1	3	4	9
185	1	3	4	13
189	1	3	4	14
187	1	3	4	15
190	1	3	4	15
186	1	3	4	16
188	1	3	4	17
191	1	3	4	19
192	1	3	4	19
193	1	3	4	19
168	1	4	1	8
169	1	4	1	11
170	1	4	1	12
173	1	4	1	13
172	1	4	1	14
171	1	4	1	17
174	1	4	1	24
175	1	4	1	24
176	1	4	1	26
180	1	4	1	27
177	1	4	1	29
178	1	4	1	31
179	1	4	1	31
197	1	7	–	14
198	1	7	–	16
43	1	8	–	21
23	1	10	–	18

137	1	10	–	23
138	1	10	–	23
135	1	10	–	24
136	1	10	–	24
1	1	12	–	7
55	1	12	–	20
183	1	15	–	8
182	1	15	–	9

सूत्रकृतांग-निर्युक्ति

सूक्ति नं.	गाथा
165	52

स्थानांग सूत्र

सूक्ति नं.	अध्ययन	स्थान (ठाणा)	उद्देशक
68	1	1	2

स्याद्वादमंजरी

सूक्ति नं.	पृष्ठ
27	5
142	263

श्राद्ध प्रतिक्रमण सूत्र

सूक्ति नं.	गाथा
119	49

हितोपदेश

सूक्ति नं.	कथा संग्रह	श्लोक
204	3 विग्रह	4
46	1 मित्रलाभ	120

हीरप्रश्न

सूक्ति नं.	प्रकाश
37	1

ज्ञानसार

[illegible]	[illegible]	[illegible]
148	7	1
147	7	2
149	7	3
145	7	5
144	7	6
146	7	7
56	8	5
82	14	2
80	14	3
84	14	4
78	14	5
81	14	8
83	15	1
77	15	2
85	15	4
79	15	5
88	15	8
57	18	1
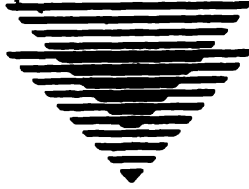
पञ्चम
परिशिष्ट
'सूक्ति-सुधारस'
में प्रयुक्त
संदर्भ-ग्रंथ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

क्रमांक "सूक्ति-सुधारस" में प्रयुक्त जैन तथा अन्य ग्रन्थ

1. अनुयोगद्वारसूत्र
2. आचारांग सूत्र
3. आचारांग निर्युक्ति
4. आचारांग सूत्र सटीक
5. आतुरप्रत्याख्यान
6. आवश्यक निर्युक्ति
7. आवश्यक मलयगिरि
8. उत्तराध्ययन
9. उत्तराध्ययन निर्युक्ति
10. ओघनिर्युक्ति
11. ओघनिर्युक्ति भाष्य
12. कल्पसुबोधिका टीका
13. गच्छाचार पयन्ना
14. गच्छाचार पयन्ना सटीक
15. चरकसंहिता – ज्वरप्रकरण
16. तित्थोगाली–पयन्ना
17. दशवैकालिकसूत्र
18. दशवैकालिक चूलिका
19. दशवैकालिक निर्युक्तिभाष्य
20. द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका
21. धर्मसंग्रह सटीक
22. धर्मरत्नप्रकरण सटीक
23. धर्मबिन्दु आचार्य हरिभद्र – श्री मुनि चन्द्रसूरि रचित टीका
24. नगगय.
25. नन्दीसूत्र
26. पञ्चतन्त्र
27. पिण्डनिर्युक्ति
28. प्रवचनसार
29. प्रशमरति प्रकरण
30. बृहत्कल्पवृत्ति सभाष्य

31. बृहत्कल्प भाष्य
32. भगवती सूत्र
33. भगवद् गीता
34. महाभारत
35. महानिशीथ सूत्र
36. मनुस्मृति
37. मूलाराधना
38. योगबिन्दु
39. योगशास्त्र
40. लोकतत्त्वनिर्णय
41. व्यवहारभाष्य
42. व्यवहाभाष्यपीठिका
43. समवायांगसूत्र
44. सूत्रकृतांगसूत्र
45. सूत्रकृतांगनिर्युक्ति
46. स्थानांगसूत्र
47. स्याद्वादमंजरी
48. श्राद्धप्रतिक्रमण
49. हितोपदेश
50. हीरप्रश्न
51. ज्ञानसार

विश्वपूज्य प्रणीत
सम्पूर्ण वाङ्मय

6
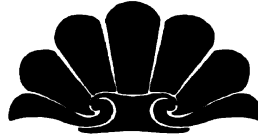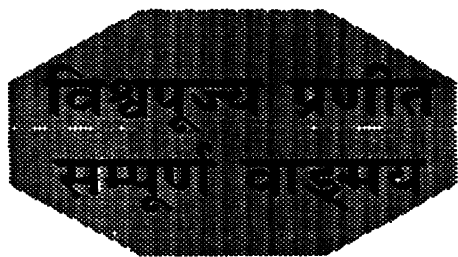
विश्वपूज्य प्रणीत सम्पूर्ण वाङ्मय

अभिधान राजेन्द्र कोष [1 से 7 भाग]
अमरकोष (मूल)
अघट कुँवर चौपाई
अष्टाध्यायी
अष्टाह्निका व्याख्यान भाषान्तर
अक्षय तृतीया कथा (संस्कृत)
आवश्यक सूत्रावचूरी टब्बार्थ
उत्तमकुमारोपंन्यास (संस्कृत)
उपदेश रत्नसार गद्य (संस्कृत)
उपदेशमाला (भाषोपदेश)
उपधानविधि
उपयोगी चौवीस प्रकरण (बोल)
उपासकदशाङ्गसूत्र भाषान्तर (बालावबोध)
एक सौ आठ बोल का थोकड़ा
कथासंग्रह पञ्चाख्यानसार
कमलप्रभा शुद्ध रहस्य
कर्त्तुरीप्सिततमं कर्म (श्लोक व्याख्या)
करणकाम धेनुसारिणी
कल्पसूत्र बालावबोध (सविस्तर)
कल्पसूत्रार्थ प्रबोधिनी
कल्याणमन्दिर स्तोत्रवृत्ति (त्रिपाठ)
कल्याण (मन्दिर) स्तोत्र प्रक्रिया टीका
काव्यप्रकाशमूल
कुवलयानन्दकारिका
केसरिया स्तवन
खापरिया तस्कर प्रबन्ध (पद्य)
गच्छाचार पयन्नावृत्ति भाषान्तर
गतिषष्ठ्या - सारिणी

ग्रहलाघव
चार (चतुः) कर्मग्रन्थ - अक्षरार्थ
चन्द्रिका - धातुपाठ तरंग (पद्य)
चन्द्रिका व्याकरण (2 वृत्ति)
चैत्यवन्दन चौवीसी
चौमासी देववन्दन विधि
चौवीस जिनस्तुति
चौवीस स्तवन
ज्येष्ठस्थित्यादेशपट्टकम्
जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति बीजक (सूची)
जिनोपदेश मंजरी
तत्त्वविवेक
तर्कसंग्रह फक्किका
तेरहपंथी प्रश्नोत्तर विचार
द्वाषष्टिमार्गणा - यन्त्रावली
दशाश्रुतस्कन्ध सूत्रचूर्णी
दीपावली (दिवाली) कल्पसार (गद्य)
दीपमालिका देववन्दन
दीपमालिका कथा (गद्य)
देववंदनमाला
घनसार - अघटकुमार चौपाई
ध्रष्टर चौपाई
धातुपाठ श्लोकबद्ध
धातुतरंग (पद्य)
नवपद ओली देववंदन विधि
नवपद पूजा
नवपद पूजा तथा प्रश्नोत्तर
नीतिशिक्षा द्वय पच्चीसी
पंचसप्तति शतस्थान चतुष्पदी
पंचाख्यान कथासार
पञ्चकल्याणक पूजा

पञ्चमी देववन्दन विधि
पर्यूषणाष्टाह्निका - व्याख्यान भाषान्तर
पाइय सद्दम्बुही कोश (प्राकृत)
पुण्डरीकाध्ययन सज्झाय
प्रक्रिया कौमुदी
प्रभुस्तवन - सुधाकर
प्रमाणनय तत्त्वालोकालंकार
प्रश्नोत्तर पुष्पवाटिका
प्रश्नोत्तर मालिका
प्रज्ञापनोपाङ्गसूत्र सटीक (त्रिपाठ)
प्राकृत व्याकरण विवृत्ति
प्राकृत व्याकरण (व्याकृति) टीका
प्राकृत शब्द रूपावली
बारेव्रत संक्षिप्त टीप
बृहत्संग्रहणीय सूत्र चित्र (टब्बार्थ)
भक्तामर स्तोत्र टीका (पंचपाठ)
भक्तामर (सान्वय - टब्बार्थ)
भयहरण स्तोत्र वृत्ति
भर्त्तरीशतकत्रय
महावीर पंचकल्याणक पूजा
महानिशीथ सूत्र मूल (पंचमाध्ययन)
मर्यादापट्टक
मुनिपति (राजर्षि) चौपाई
रसमञ्जरी काव्य
राजेन्द्र सूर्योदय
लघु संघयणी (मूल)
ललित विस्तरा
वर्णमाला (पाँच कक्का)
वाक्य-प्रकाश
बासठ मार्गणा विचार
विचार - प्रकरण

विहरमाण जिन चतुष्पदी
स्तुति प्रभाकर
स्वरोदयज्ञान - यंत्रावली
सकलैश्वर्य स्तोत्र सटीक
सद्य गाहापयरण (सूक्ति-संग्रह)
सप्ततिशत स्थान-यंत्र
सर्वसंग्रह प्रकरण (प्राकृत गाथा बद्ध)
साधु वैराग्याचार सज्झाय
सारस्वत व्याकरण (3 वृत्ति) भाषा टीका
सारस्वत व्याकरण स्तुबुकार्थ (1 वृत्ति)
सिद्धचक्र पूजा
सिद्धाचल नव्वाणुं यात्रा देववंदन विधि
सिद्धान्त प्रकाश (खण्डनात्मक)
सिद्धान्तसार सागर (बोल-संग्रह)
सिद्धहैम प्राकृत टीका
सिंदूरप्रकर सटीक
सेनप्रश्न बीजक
शंकोद्धार प्रशस्ति व्याख्या
षड् द्रव्य विचार
षड्द्रव्य चर्चा
षडावश्यक अक्षरार्थ
शब्दकौमुदी (श्लोक)
'शब्दाम्बुधि' कोश
शांतिनाथ स्तवन
हीर प्रश्नोत्तर बीजक
हैमलघुप्रक्रिया (व्यंजन संधि)
होलिका प्रबन्ध (गद्य)
होलिका व्याख्यान
त्रैलोक्य दीपिका - यंत्रावली ।
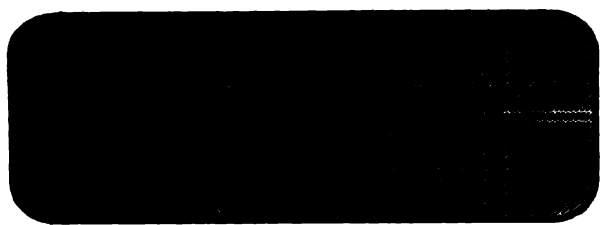
लेखिकाद्वय की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ

१. आचाराङ्ग का नीतिशास्त्रीय अध्ययन (शोध प्रबन्ध)
लेखिका : डॉ. प्रियदर्शनाश्री, एम. ए. पीएच.डी.

२. आनन्दघन का रहस्यवाद (शोध प्रबन्ध)
लेखिका : डॉ. सुदर्शनाश्री, एम. ए., पीएच.डी.

३. अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस (प्रथम खण्ड)

४. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति सुधारस (द्वितीय खण्ड)

५. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस (तृतीय खण्ड)

६. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस (चतुर्थ खण्ड)

७. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस (पंचम खण्ड)

८. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस (षष्ठम खण्ड)

९. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस (सप्तम खण्ड)

१०. 'विश्वपूज्य' : (श्रीमद्राजेन्द्रसूरि: जीवन-सौरभ) (अष्टम खण्ड)

११. अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका (नवम खण्ड)

१२. अभिधान राजेन्द्र कोष में, कथा-कुसुम (दशम खण्ड)

१३. राजेन्द्र सूक्ति नवनीत (एकादशम खण्ड)

१४. जिन खोजा तिन पाइयाँ (प्रथम महापुष्प)

१५. जीवन की मुस्कान (द्वितीय महापुष्प)

१६. सुगन्धित-सुमन (FRAGRANT-FLOWERS) (तृतीय महापुष्प)

प्राप्ति स्थान :
श्री मदनराजजी जैन
द्वारा - शा. देवीचन्दजी छगनलालजी
आधुनिक वस्त्र विक्रेता, सदर बाजार,
पो. भीनमाल-३४३०२९
जिला-जालोर (राजस्थान)
☎ (02969) 20132